चित्रसेन पद्मावती चरित्र

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे प्रतिदिन दण्ड देना होगा।



श्रीवीतरागाय नमः ।

पं० पूर्णमल्लजी कवि विरचित-

चित्रसेन-पद्मावतीचरित्र ।

सम्पादकः—

न्या० पं० के० भुजबलीजी शास्त्रीविद्याभूषण,

सम्पादक, जैनसिद्धान्त भास्कर और

मैनेजर, जैनसिद्धान्त भवन- आरा ।

प्रकाशकः—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बरजैनपुस्तकालय—सूरत ।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६५ [प्रति १०००

श्रीमान् सेठ हेमचन्द हरखचन्द चौकसी बम्बईकी ओरसे अपनी सौ० धर्मपत्नी नंदसुखगौरीके दशलक्षण व्रतके १० उपवासके उपलक्ष्यमें 'जैन महिलादर्श" के १७ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट।

मूल्य—छह आने।


मुद्रक
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
जैन विजय प्रेस.
सूरत


प्रकाशक:
मूलचन्द किसनदास कापड़िया

मेरे दो शब्द।

यह "चित्रसेन-पद्मावती चरित्र" शीलका महत्व प्रकट करनेवाला एक चरित्र पुस्तक है। यों तो प्रस्तुत कृतिमें नायक चित्रसेन और नायिका पद्मावती ये दोनों अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीरके समकालीन बतलाये गये हैं, परन्तु मेरे जानते, इतिहास इस विषयमें सर्वथा मौन है। साथ ही इसकी कथावस्तु भी अपनेको पौरणिक कथानकी ओर ही खींचती है। कृति पौराणिक हो या ऐतिहासिक, इस रचनासे शीलकी अनुकरणीय एवं पवित्र शिक्षा मिलती है अवश्य। हमारी भारतभूमि आजसे नहीं; चिरकालसे शील-प्रधान होनेके लिये विख्यात है। आज भी अन्यान्य अनन्य-भूत इन्हीं गुणोंसे इसका मस्तक संसारभरमें ऊंचा है। वास्तवमें मानवजातिको कुपथकी ओरसे हटाकर सुपथमें लगाना ही पुराण एवं चरित्र-ग्रन्थोंका प्रधान उद्देश है। यह कठिन कार्य दृष्टान्तके द्वारा बहुत कुछ सुगम होजाता है। इसीका यह सुमधुर फल है कि भारतवर्षमें ही नहीं; प्रत्येक देश और धर्ममें इन ग्रन्थोंको अग्रस्थान मिला है।

अस्तु, इस ग्रन्थके मूल रचयिता पं० पूर्णमल्लजी हैं। इनकी वह मूल रचना संस्कृत-भाषा-बद्ध है और उसीका यह हिन्दी भाषा-नुवाद है। उन्होंने अपनी इस कृतिमें अपनेको विख्यात मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छके प्रातःस्मरणीय तथा सर्वमान्य आचार्य

श्री कुन्दकुन्दकी परम्परामें बतलाकर अपनी खास गुरु परम्पराएँ निर्देश की हैं-(१) भट्टारक धर्मकीर्ति, (२) भट्टारक पद्मकीर्ति, (३) श्री भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति, (४) श्री भट्टारक सकलकीर्ति (द्वितीय) (५) श्री भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति । पं० पूर्णमलजीने अपनेको इन्हीं भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिका शिष्य कहा है। साथ ही साथ इसमें ग्रन्थ समाप्तिका समय वि० सं० १७५४ पौष कृष्ण चतुर्दशी मगलवार दिया हुआ है। इन बातोंके अतिरिक्त ग्रन्थकर्ताने अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है। इसीसे इनके विषयमें विशेष कुछ नहीं लिखा जासका।

हां, यदि इनकी मूल संस्कृत कृति दृष्टिगोचर होती तो कमसे कम साहित्यिक परिचय मिल जाता। पर अफसोस ! वह भी उपलब्ध नहीं होसका। मैंने आपकी निर्दिष्ट गुरु-परम्पराको भी इधर उधर टटोला-पर इसका भी नतीजा नहीं निकला। अतः अंतमें सब प्रकारसे अपनी इच्छाको संवरण करना पड़ा।

अब रही प्रस्तुत अनुवादकी बात। भाग्यवशात् इस अनुवादकी एक प्रति भवनमें रद्दी कागजोंके गट्ठेमें अचानक मुझे मिली। आमूलाग्र पढ़नेके बाद इसे ठीकठाक कर प्रकाशित करा देनेकी मेरी इच्छा हुई। इस विषयमें मैंने साहित्य प्रेमी धर्मात्मा सेठ मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया-सूरतको लिखा। आप मेरी इस कामनाकी पूर्तिके लिये सहर्ष सहमत होगये। फलस्वरूप यह लुप्त-प्राय कृति विज्ञ पाठकोंके सामने सुलभतया उपस्थित हुई। इसके

लिये प्रकाशकजी विशेष धन्यवादके पात्र हैं। हां, एक बात है। प्रेस दूरस्थ होनेसे मुझे इसका एक भी प्रूफ देखनेका अवसर नहीं मिला, इसीसे कुछ गलतियां रहगई हैं। खास करके जहां २ चित्रश्रेणी छप गया है वहां चित्रसेन पढ़ें। मुझे पूरी आशा है कि दूसरे संस्करणमें इसकी परिष्कृति प्रकाशक महोदय अवश्य करदेंगे।

जैन सिद्धान्तभवन,
आरा ता० २-२-३९

निवेदक—
के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण
सम्पादक 'जैन सिद्धान्तभास्कर'

निवेदन।

स्व० पं० पूर्णमलजी रचित सच्चरित्र और शीलका माहात्म्य दर्शानेवाला यह चित्रसेन-पद्मावती चरित्र एक ऐतिहासिक जैन चरित्र है, जिसको प्रगट करनेकी सूचना सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री० पं० के० भुजबलीजी शास्त्री आरासे मिलते ही हमने उसकी स्वीकारता देकर इसे आपसे मगा लिया था और उसका सुलभतासे जैन समाजमें प्रचार होजाय इसके लिये हम किसी दानीको ढूंढ़ रहे थे, इतनेमें गत भादोंमें हमारी भतीजी नंदसुखगौरी (स्व० सेठ जीवनलाल किसनदास कापड़ियाकी तृतीय पुत्री और ईडर नि० सेठ हेमचंद हरखचंद चौकसी बम्बईकी धर्मपत्नी) ने दशलक्षण व्रतके १० उपवास किये थे उस समय हम बम्बई गये थे और विधिपूर्वक उसके व्रतकी पूर्णाहूति हमने कराई थी, उस समय सेठ हेमचंदजीसे इस

उपवास निर्विघ्न पूर्ण होनेकी खुशीमें कुछ दान करनेकी प्रेरणा करते ही आपने रु० १५१) इसके उपलक्षमें नगद प्रदान किये थे। उसमेंसे ६६=) जैन संस्थाओंको दानमें भेजे गये थे व शेष रुपयोंसे यह पुस्तक "जैन महिलादर्श" के १७ वें वर्षके ग्राहकोंको भेटमें बांटनेके लिये प्रगट की जाती है, आशा है कि ऐसे शास्त्रदानका हमारे अन्य भाई व बहिनें अनुकरण करेंगे तो हजारों और लाखों धार्मिक पुस्तकोंका मुफ्त प्रचार होसकेगा।

"जैन महिलादर्श" के ग्राहकोंको ही यह पुस्तक भेटमें मिलेगी। अतः सर्व साधारणमें भी इसका प्रचार होसके इसके लिये इसकी अलग प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं आशा है कि इस नूतन धार्मिक चरित्रकी प्रथमावृत्तिका शीघ्र ही प्रचार होजायगा।

वीर सं० २४६५
फाल्गुन वदी ८
ता० ११-२-३९



निवेदक—
मूलचंद किसनदास कापड़िया
—प्रकाशक।





श्री० सौ० नन्दसुखगौरी,

धर्मपत्नी, सेठ हेमचन्द हरखचन्द चौकसी–बम्बई।

[आपने वीर सं० २४६४ में दशलक्षणव्रतके १० उपवास निर्विघ्न पूर्ण किये थे]



चित्रसेन-पद्मावतीचरित्र।

प्रथम परिच्छेद।

भव्यजन रूपी कमलोंके विकास करनेवाले, उन महावीर भगवानकी मैं (ग्रन्थकार) वन्दना करता हूं "जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन आठ कर्मोंका नाश कर मोक्षपद प्राप्त किया है।"

उपर्युक्त आठों कर्मोंके नाश करनेवाले, ऋषभ, अजित, आदि तेईस तीर्थंकरोंको भी मैं नमस्कार करता हूं, जिन्होंने सदुपदेश द्वारा जनताका उद्धार किया है।

अष्ट गुण विराजमान, परमानन्दमय पदमें लीन, योगियोंको ध्यान करने योग्य, सिद्ध भगवानको परमपदकी प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करता हूं।

छत्तीस गुण धारक, निर्दोष चारित्रके पालन करनेवाले, निरन्तर स्व-पर-हित-परायण, आचार्योंको उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करता हूं।

मैं उन उपाध्यायोंकी शास्त्रीय ज्ञानकी प्राप्तिके लिये स्तुति करता हूं, जो स्वयं शास्त्र-समुद्रके पारगामी हैं, और अपने शिष्यवर्गको निरन्तर शास्त्रोंका अध्ययन कराते हैं।

साधुवृत्तिकी प्राप्तिके लिये मैं उन साधुओंका स्तवन करता हूं, जो अट्ठाईस मूलगुणोंके धारक हैं, तथा जो निरन्तर आत्मध्यानमें लीन रहते हैं।

तथा द्वादशांग वाणीकी रचना करनेवाले, वृषभसेनसे आदि लेकर गौतम पर्यन्त समस्त गणधरोंको मैं नमस्कार करता हूं।

तथा जिनेन्द्र भगवानके मुखकमलसे उत्पन्न होनेवाली मनोहर सरस्वती देवीको, बुद्धि विकासके लिये मैं नमस्कार करता हूं।

ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये पंच परमेष्ठी आदिको नमस्कार कर अब मैं उस आश्चर्यमय कथाका प्रारम्भ करता हूं, जिसके द्वारा उत्तम शीलव्रतकी प्राप्ति होगी।

इस पृथिवी मंडलपर गोलाकार, एक लाख योजन विस्तारवाला, लवण समुद्रसे घिरा हुआ, जम्बू (जामुन) वृक्षसे चिह्नित, चौंतीस क्षेत्रोंसे परिपूर्ण, महा समृद्धिशाली जम्बूद्वीप है।

इस जम्बूद्वीपके बीचमें सुदर्शन मेरु है, जो षट्कुलाचलोंसे शोभायमान है, तथा सोलह जिन चैत्यालय और भद्रशाल, पांडुक वनादिकी अनुपम शोभाको धार

करता है। सुदर्शन मेरुकी दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र है। तथा इस भरतक्षेत्रमें पच्चीस योजन ऊँचा विजयार्द्धगिरि है। इसकी दक्षिण और उत्तर श्रेणियें एकसौ दस महासमृद्धिशालिनी, नगरी हैं। इनमें देवोंके समान ऐश्वर्यवान, विद्या, कौशल और सदाचारी विद्याधर निवास करते हैं। नौ कूटोंसे युक्त इस विजयार्द्धगिरिका विस्तार पूर्व समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्र तक है।

इसी विजयार्द्धगिरिको भेदकर गंगा और सिन्धु नामकी दो नदियां निकलीं हैं। इनमेंसे गंगा नदी पूर्व समुद्रमें और सिन्धु नदी पश्चिम समुद्रमें मिली है।

इन्हीं गंगा और सिन्धु नदियोंके बीच आर्यक्षेत्र है। इस आर्यक्षेत्रका विस्तार २२५ योजनसे कुछ अधिक है, तथा इस क्षेत्रमें ३२००० देश हैं। और इनमें आर्यजन निवास करते हैं।

इसी भरतक्षेत्रमें मगध नामका एक विशाल देश है, और इस मगध देशमें राजगृह नामक अति मनोहर नगर है। तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि—श्रेणिक नामका राजा मगध देशका अधिपति था। राजगृह नगरको उसने राजधानी बनाया था। इसलिये वह राजगृहहीमें निवास करता था। महाराज श्रेणिकको जिनधर्ममें गाढ़ श्रद्धा थी। महाराज श्रेणिककी पट्टरानीका नाम था चेलना। चेलना परम सुन्दरी, सौभाग्यवती और पतिव्रता थी। इन दोनोंके वारिषेण, अभय-

कुमार, आदि राजकुमार थे। यह राजकुमार भी धर्मात्मा और राज-कार्यमें अत्यन्त निपुण थे।

इस प्रकार महाराज श्रेणिकको सांसारिक सुखकी संपूर्ण सामग्री मौजूद थी। महाराज भलीभांति प्रजा-पालन करते हुए अपने समयको विताते थे।

एक समय महाराज अन्तःपुर (रनवास) में सुखसे सो रहे थे, अभी सवेरा होनेमें कुछ देर थी, महाराजकी अचानक नींद खुल गई। और महाराज शय्यापर पड़े२ इस प्रकार विचार करने लगे कि "यद्यपि मैंने शास्त्रोंमें तो शीलका माहात्म्य-और शीलवान महात्माओंकी कथा तो अनेकवार सुनी है, पर मैं यह जानना चाहता हूं कि इस वर्तमान समयमें भी कोई अखण्ड शीलव्रतका पालन करनेवाला है या नहीं, इस बातको जाननेका क्या उपाय हो सकता है ! हां, यदि महावीर भगवानका दर्शन हो तो अवश्य मेरी यह आशा पूर्ण हो सकती है।

महाराज श्रेणिक इस प्रकार विचार कर रहे थे कि इतनेमें सवेरा भी होगया। सब लोग निद्रा छोड़ अपने २ कामोंमें लग गये। महाराजने भी उठकर स्नानादि कर जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की। इस प्रकार दैनिक क्रिया करके महाराजने भोजन किया और थोड़ी देर बाद वस्त्र-अलंकारादिसे भूषित होकर भद्र वेषमें राजसभामें आये। महाराजके सभामें आजानेपर नानाप्रकारके बाजोंकी मधुर ध्वनि होने

लगी, शूर-सामन्त आकर प्रणाम कर योग्य आसन पर बैठ गये। मंत्री और पुरोहित भी महाराजके आसपास बैठे थे। अधीन राजाओंके यहांसे आये हुये उपहार (नजर) का महाराजने निरीक्षण किया।

इतनेहीमें छहों ऋतुओंके फल फूलोंको लेकर मालीने आकर महाराजको प्रणाम किया तथा अति विनयसे महाराजसे निवेदन किया कि महाराज! आपके शुभ कर्मके उदयसे इसी विपुलाचल गिरि पर महावीर भगवानका शुभागमन हुआ है! यह शुभ समाचार सुनकर महाराजको परम आनन्द हुआ। महाराजने वनपालको खूब इनाम देकर विदा किया। तथा विपुलाचलकी ओर सप्तपद चलकर महावीर भगवानकी परोक्ष वन्दना की।

महाराजने नगरमें घोषणा करवा दी। नगरके समस्त आबाल वृद्ध-नर नारी गण, अपार आनन्दमें मग्न होगये। महाराजने—अपने समस्त परिवार; चतुरंग सेना और नगरके समुदायको लेकर वीर भगवानकी वंदनाके लिये विपुलाचलकी ओर प्रयाण किया। महाराजके आगे २ जो अनेक भांतिके बाजें बजते थे, उनके मनोहर शब्दोंसे दिशायें गूँज उठीं; उस समयकी शोभा अनुपम थी। उस महान जनसमुदायके बीचमें महाराज श्रेणिक ठीक इन्द्र जैसे शोभित होते थे।

थोड़ी देर चलनेके बाद भगवानका समवसरण दृष्टिगोचर होने लगा। महाराज हाथीपरसे उतर पड़े, और दल बल सहित विपुलाचल पर आरोहण किया।

समवसरणमें विराजमान वीर भगवानकी तीन प्रदक्षिणा दीं और विशुद्ध मन, वचन, कायसे पूजा की। पूजा स्तुति करनेके बाद महाराज मनुष्योंके कोठेमें विराजमान हुए। वीर भगवानकी दिव्यध्वनि सुनकर महाराजको अपार आनन्द हुआ।

अवसर देखकर महाराज श्रेणिकने अत्यन्त विनीत भावसे वीर प्रभुके प्रति निवेदन किया कि-भगवन्! अबसे पहलेका शील माहात्म्य पूर्व तीर्थंकरोंने भलीभांति वर्णन किया है, तथा पुरुषोंमें मेघकुमारादिक और नारियोंमें सीता आदिने अखण्ड शीलव्रतका पालन किया, तथा इन्होंने इस लोकमें अत्यन्त गौरव प्राप्त किया है और परलोकमें भी उत्तम पदके अधिकारी हुए हैं। वास्तवमें शीलका माहात्म्य बड़ा ही उत्तम एवं मुक्ति तकका देनेवाला है, पर भगवन्! मैं जानना यह चाहता हूं कि इस वर्तमान समयमें भी कोई इस व्रतका पालन करनेवाला है या नहीं?

महाराज श्रेणिकके इस प्रश्नके बाद भगवानकी मेघ-निनाद समान गम्भीर ध्वनि हुई, जिसका मर्म इसप्रकार है—

भरतक्षेत्र—आर्यखण्डमें, समस्त देशोंका शिरोमणि—कलिंग नामका देश है। यह देश धन-धान्यसे समृद्ध, ग्राम, पर्वत, सुन्दर वन, और नदियों आदिकी प्राकृतिक शोभाका केन्द्र है। इस देशमें दुर्भिक्ष, महामारी, चोर, और राजकर आदिकी पीड़ा प्रजाको नहीं भोगनी पड़ती है। इस देशमें

वन–उपवनोंकी विचित्र भूमि, नाना जातिके फल फूल, उनपर गुंजायमान भ्रमरोंका श्रवणसुखद कलरव अलौकिक आनंद-जनक है। इस देशके निर्जन–काननमें, जितेन्द्रिय, तप और ध्यानमें लीन, परम शान्त मुद्राधारक मुनिजन सदा विहार करते हैं।

यहांके विशाल–जिन चैत्यालय, उनमें विराजमान कमनीय कान्ति, जिन प्रतिबिम्ब तथा चैत्यालयोंकी विचित्र उपकरणों द्वारा सजावट देखते ही बनती है। इन चैत्यालयोंमें प्रतिदिन प्रसन्न मन नर-नारीगण आकर भगवानकी पूजा करते हैं। वास्तवमें इस देशकी शोभा देखकर देवोंको भी आश्चर्य होता है।

इस कलिङ्ग देशमें वसन्तपुर नामका एक नगर है। यह नगर भी परम रमणीय एवं बड़ा ही विशाल ही है। इसकी रक्षाके लिये तीन कोट और खाई बनी है। नगरकी चारों दिशाओंमें चार दरवाजे बने हैं। उन्नत-जिन मंदिर, विशाल राजमहल, और धनिकोंके सुन्दर प्रासादोंसे नगर अलौकिक शोभाको धारण करता है। बाजार, चौक, नाटकघर आदिने नगरकी शोभा दुगुनी बना दी थी। वहांके मकानोंकी कांच समान निर्मल भीतोंमें हाथी अपनी परछाई देखकर इसको दूसरा हाथी समझकर उनमें भ्रमसे दन्तप्रहार करते थे।

वहांके गोलाकार तालावोंमें निर्मल जल भरा था, उसमें सब तरहके कमल खिल रहे थे, कमलोंका सुगन्धिमय

पराग उड २ कर जनताके मनको प्रसन्न करता था। उन तालाबोंमें हंस हांसिनी, चकवा चकवी किलोल करते हैं। बसनापुरके वन और उपवनोंने अपने समृद्धिशाली-फल फूलोंसे नन्दनवनकी शोभा जीत ली थीं। वहांके बगीचोंमें अशोक, चम्पक, आम, नारंगी, नीबू, अनार, केला, सुपारी, किसमिस, खर्जूर, चन्दन आदि विविध जातिके वृक्ष लगे थे। सारांश यह है कि वसन्तपुर सब तरहसे उत्तम है।

वहांके स्त्री पुरुष बड़े ही धार्मिक हैं, व्रताचार परायण हैं, दया और दानमें लीन हैं। वास्तवमें वसन्तपुरनिवासी जन स्वर्ग और मुक्तिके अधिकारी हैं।

वहांके मनुष्योंमें और स्वर्गीय देवोंमें केवल इतना ही अन्तर है कि देव निर्निमेष दृष्टि हैं और मनुष्योंके पलक लगते हैं, और सब तरहसे वसन्तपुर निवासी जन देव तुल्य हैं। वसन्तपुरके महाराजका नाम वीरसेन है। महाराज एक उत्तम शासक हैं। उनकी आज्ञाको कोई भी उल्लंघन नहीं करता। महाराज वीरसेन बड़े ही नीति निपुण हैं। शूर सामन्तोंका वे बड़ा आदर करते हैं, उनके बड़ी विशाल चतुरंग सेना है। महाराज विजेता हैं और दयालु हैं, परम दानी हैं, और शत्रुओंके लिये पूरे अभिमानी भी हैं, महाराज पवित्र हृदय, सुन्दर युवा, प्रतापी और जैनधर्मके परम उपासक हैं।

इनकी महारानीका नाम रत्नमाला। रत्नमाला भी परम सुन्दरी, पतिव्रता, यौवन-सम्पन्न, दयावती और जिनधर्म-

परायण है। रत्नमालाका हृदय पवित्र है, और वह सदा पतिकी आज्ञाकारिणी है।

एक समय यह राज दम्पती शयनागारमें सोये हुए थे, पिछली रातमें उत्तम फल देनेवाले स्वप्नोंको देखा। सवेरा होनेपर प्रातःकालकी समस्त क्रियाओंको करके अच्छे २ अलंकारोंसे भूषित हो, कुछ सहेलियोंको साथ लेकर रातके देखे स्वप्नोंको सुनानेके लिये महाराजके निकट गई। महाराजने आदरपूर्वक महारानीको अपने पास बैठा लिया। अवसर देखकर महारानीने निवेदन किया-प्राणनाथ! आज रातको मैंने पूर्णमासीका निर्मल चन्द्रमा, सफेद हंस, शुक्लवर्ण गजराज, और मुँहमें प्रवेश करते हुए सिंहको स्वप्नमें देखा है। मुझे इन स्वप्नोंके फल सुननेकी बड़ी उत्कट अभिलाषा है, कृपाकर आप इन स्वप्नोंका फल बताइये !!!

महाराजने प्रसन्न होकर कहा—प्रिये ! इन स्वप्नोंसे तो जान पड़ता है, तुम्हारे गर्भसे पुत्ररत्नकी उत्पत्ति होगी। सुनो, पूर्ण चन्द्रदर्शनका फल यह है कि पुत्र चौंसठ कलाओंका धारी होगा। सफेद हंसका फल है कि पुत्रकी निर्मल कीर्ति दिगन्तव्यापिनी होगी तथा शुक्ल गजराजका फल है कि पुत्र गम्भीर होगा और चौथे स्वप्नका फल यह है कि पुत्र प्रतापी, पराक्रमी होगा।

इस प्रकार स्वप्नोंके फलको सुनकर महारानीको सीमातीत आनन्द हुआ।

स्वप्नोंके देखनेसे तथा उनका फल सुनने मात्रसे ही पुत्रलाभ जैसा आनन्द हुआ।

रानीने उसी दिनसे गर्भ धारण किया। महाराजने उत्तम चिकित्सकों द्वारा गर्भ-रक्षाका उचित प्रबन्ध किया। धीरे धीरे कुशल पूर्वक नौ महीना बीत गये, तथा शुभ मुहूर्तमें महारानी रत्नमालाने पुत्ररत्न उत्पन्न किया।

यह शुभ समाचार सुनकर महाराजके हृदयमें आनन्द सागर लहराने लगा। महान् सजधज, और आयोजनपूर्वक पुत्रजन्मका उत्सव मनाया। जिनेन्द्र भगवानकी पूजा कराई, याचकोंको भरपूर दान दिया, समस्त नगर आनन्दमय हो-गया। कहीं नानाप्रकारके बाजोंकी ध्वनि है तो कहीं मधुर संगीतका समारम्भ होरहा है। कहीं नाच होरहा है तो कहीं दुंदुभीका गंभीर नाद दिशाओंको गुँजित कर रहा है। सारांश यह कि संपूर्ण नगरवासी जनोंने बड़े ही उत्साहसे राजकु-मारका जन्मोत्सव मनाया।

महारानीने भी पुत्रजन्मके उत्सवमें किसी बातकी कमी नहीं रक्खी। अपने बन्धुवर्ग, राजकर्मचारीगण और नागरिक लोगोंको निमन्त्रित कर सम्मानपूर्वक उत्तम२ वस्त्र, अलङ्कार, पान, सुपारी आदिसे यथोचित शिष्टाचार किया।

शुभ मुहूर्तमें राजकुमारका नामकरण हुआ। राज-कुमारका नाम चित्रसेन रक्खा गया।

अब तो राजकुमार बाल चन्द्रमाकी तरह दिनोंदिन

बढ़ने लगा। कुछ दिनों बाद नवजात बालक अपनी स्वाभाविक-बालचेष्टासे, तोतली बोलीसे माताके मनको प्रसन्न करने लगा, इसी क्रमसे राजकुमारकी बाल्य अवस्था बीत गई, और कुमार अवस्थामें पदार्पण किया।

शुभ मुहूर्तमें योग्य उपाध्यायके पास राजकुमारको अक्षराभ्यास प्रारम्भ कराया गया।

राजकुमारकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। इस कारण थोड़े ही दिनोंमें धर्मशास्त्र, व्याकरण, काव्य, राजनीति आदि समस्त आवश्यक विषयोंका अध्ययन कर लिया। थोड़े ही दिनोंमें पुत्रको विद्या-सम्पन्न देखकर पिता भी फूले अंग न समाये। बालककी चतुराई देखकर पिताको पूर्ण विश्वास होगया कि यह राज्य-शासन अच्छी तरह चलावेगा।

राजकुमार चित्रसेनने थोड़े ही दिनोंमें अपने उत्तम गुणोंसे प्रजाके हृदयमें तथा अपनी विद्वत्तासे विद्वानोंके हृदयमें और अपनी अलौकिक सुन्दरतासे स्त्रियोंके हृदयमें स्थान पालिया था। वे सर्वप्रिय और सर्वमान्य होगये थे।

ग्रन्थकार कहते हैं कि इस संसारमें धर्म करनेसे संपूर्ण सुखोंकी प्राप्ति होसकती है। महाराज वीरसेनने पुण्यके उदयसे ही राजसिंहासन प्राप्त किया, पुत्र-रत्नकी प्राप्ति भी पुण्यके उदयसे हुई। इसलिये सर्व प्राणियोंको सदा धर्ममें लीन रहना चाहिये।

प्रथम परिच्छेद समाप्त।



द्वितीय सर्ग।

पुण्यके उदयसे प्राप्त हुये राज्यका पालन करता हुआ राजा वीरसेन धर्म-कर्मके साथ२ संसारके भोगोंको भोगता था। इसके मन्त्रीका नाम बुद्धिसागर था। यह मन्त्री बड़ा ही बुद्धिमान् था।

मन्त्रीकी स्त्रीका नाम बुद्धिमती था, और लड़केका रत्नसार। यह रत्नसार बड़ा ही विनयी और निपुण था। शान्त और साहसी था—राजनीतिमें निपुण था। किसी समय रत्नसार मन्त्रिपुत्रकी चित्रसेन राजकुमारके साथ मैत्री होगई। हर वक्त दोनों साथ रहते थे, दोनोंका हृदय एक था। राजकुमार और मंत्रिपुत्रका पारस्परिक प्रेम होनेके कारण दोनों आनन्द-समुद्रमें गोते लगाने लगे, और नाना प्रकारसे आमोद-प्रमोदसे दिन बिताने लगे।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि राजकुमार चित्रसेन परम सुन्दर था। अपने सौंदर्यसे कामदेवको भी लज्जित करनेवाला था।

जब कभी राजकुमार नगरकी गलियोंसे घूमनेको निकलता था—स्त्रियोंके झुण्डके झुण्ड उसे देखनेके लिये विह्वल हो उठते थे। उस समयका दृश्य (तमाशा) विलक्षण होता था, देखने ही बनता था। कोई खिड़कियोंमेंसे झांकती थीं, कोई गलीके एक कोनेमें खड़ी होकर ताकती थीं, कितनी

तो आगे आ खड़ी होजाती थी और कितनी ही उनका पीछा करनेपर उतारू होजाती थीं। मतलब यह कि जिधर राजकुमार जाता था उधर ही स्त्रियोंकी खासी भीड़ होजाती थी। उनकी मनमोहनी सूरत देखनेके लिये घरका काम धन्धा छोड़ देना स्त्रियोंके लिये मामूली बात होगई थी। रोते बच्चेको संभालना तो दूर रहा, दूसरेके लड़केको ही अपना समझ गोदमें रखकर राजकुमारको देखनेके लिये दौड़ जाती थीं। सच तो यह है कि राजकुमारके अनोखे रूपको देखकर स्त्रियां अपनी सुध बुध भूल गईं। गलेका हार कमरमें लटका लिया, करधौनीको गलेमें पहन लिया। हाथोंका गहना पैरोंमें, पैरोंका हाथोंमें पहन लिया। राजकुमारकी सुन्दरताका कहां-तक वर्णन किया जाय। पाठक इसीसे पता लगा लें कि नवल नारियोंकी तो बात जाने दीजिये, बड़ी २ बूढ़ी स्त्रियोंके मनको भी उसने चंचल कर दिया, वे भी उसे देख-नेको उकताने लगीं।

लेकिन राजकुमार चित्रसेन सुशील था, विचारशील था, नवयुवक होनेपर भी जितेन्द्रिय था। यह सच है कि उसकी तरफ स्त्रियाँ देखतीं थीं, पर वह उनकी तरफ नहीं देखता था, देखकर भी उसके पवित्र हृदयमें विकार नहीं होता था, बुरी दृष्टिसे वह उनकी तरफ नहीं देखता था। वरन् उन्हें माता और बहिन समझता था।

यद्यपि यह उनकी तरफ नहीं देखता था, वे स्त्रियाँ ही

इसे देखती थीं। अतः कुमार निरपराध है और स्त्रियोंका सरासर अपराध है। नगरके लोगोंको कुलीन स्त्रियोंके नैतिक चारित्रकी निर्बलता देख दुःख हुआ, ऐसा होना अनिष्ट समझा गया। लोगोंके मनमें क्षोभ—आतंक उत्पन्न होगया।

इस बातपर विचार करनेके लिये—उचित उपाय करनेके लिये—नगरके विचारशील, वयोवृद्ध, अनुभवी लोग इकट्ठे हुये। उस बात पर विचार किया और स्थिर किया कि राजाके पास जाकर निवेदन करना चाहिये।

सब लोग राजाके पास गये। सभामें सिंहासन पर बैठे हुये राजाको प्रणाम किया और नीचा मुंह करके बैठ गये।

आगत मनुष्योंके आनेका कारण राजाकी समझमें नहीं आया। इसी लिये राजाने उन लोगोंसे आनेका कारण पूछा।

राजाके पूछने पर उन सबका मुखिया कहने लगा—महाराज! सुनिये!! हम अपने आनेका कारण बतलाते हैं। जिस प्रजाका आप शासन करते हैं वह दुःखी हो, यह तो कभी हो ही नहीं सकता।

आज जो हम लोग आपके राज्यमें रह कर इतने धनवान हुये हैं, सब प्रकारसे सुखी हैं, प्रजामें न दीन है और न कोई मूर्ख है। यह सब महाराज! आपके सुशासनका फल है। पर दीनबन्धु! हम लोगोंका एक निवेदन है—कहते लज्जा आती हैं, संकोच होता है, पर धर्मावतार!! प्रजा पुत्रके समान होती है और राजा पिताके। इसलिये जो

कुछ भी वास्तविक घटना—सच बात है, उसे जैसीकी तैसी कह देना हम उचित समझते हैं।

आपके सुपुत्र राजकुमार चित्रसेन गुणवान और सुशील हैं यह सच है, पर वे साक्षात् कामदेवके अवतार भी हैं, यह भी सच है। और यही कारण है कि वे जब नगरमें घूमते हैं तब उनके देखने मात्रसे स्त्रियोंके मन ठिकाने नहीं रहते, घरके सब कामकाजको छोड़कर उन्हें देखने लगतीं हैं। हम लोगोंके मना करनेपर भी नहीं मानतीं। सच तो यह है कि वे उनकी मनमोहनी सूरतको देख कर कामान्ध होजाती हैं। ऐसा होनेसे हम लोगोंको अनिष्ट होनेकी सम्भावना है, इसलिये महाराज ! राजकुमारकी रक्षाका कोई प्रयत्न किया जाय, यही हम लोगोंकी प्रार्थना है।

राजा इस बातको सुनकर मनमें विचारने लगा। बड़ी कठिन समस्या है—बड़ी मुश्किल हुई। जिस पुत्रका हमने ऐसी उत्तम रीतिसे लालन-पालन किया है जिससे हमें अपनी वंश वृद्धिकी आशा है-उसका निग्रह! उसे कठोर दंड कैसे दिया जासकता ? जो हो—पुत्रको हम दण्ड दें यह तो मुझसे न होगा। राजा इस विषयमें बड़ी देर तक तर्कवितर्क करते रहे और अन्तमें स्थिर किया कि मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता जिससे प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट हो। उससे हमारा कोई वास्ता नहीं, मतलब नहीं—जिससे प्रजा कष्ट भोगे। राजाकी सत्ता प्रजाके आधीन है।

प्रजाके ही कारण कोई मनुष्य विशेष राजा कहाता है, इसलिये उत्तम राजाको हर वक्त इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे अपनी प्रजा सुखी हो। शोभाके लिये कानमें सोनेके गहने पहने जाते हैं, यदि उनसे कान टूटें तो उस गहने हीसे क्या प्रयोजन ? इसी लिये कुलकी वृद्धिके लिये-राज काजकी उन्नतिके लिये राजकुमारका होना आवश्यक है, अन्यथा नहीं। धन्य हैं वे नरपतिगण ! जो निःस्वार्थभावसे प्रजाका पालन पोषण करते हैं। राजा इस-प्रकार पुत्रके विषयमें विचार कर रहा था—राजा राजकुमारकी करतूतसे नाराज भी होगया था।

नगरसे घूमकर पिताको प्रणाम करनेके लिये राज-कुमार राज दरबारमें आया। विनयसे पिताको नमस्कार कर पास ही बैठ गया। बैठते ही राजाने कहा—पुत्र! तुम्हारे विषयमें नागरिक लोगोंसे विलक्षण बात सुनी। वे तुम्हारा उलाहना देने आये थे। तुम्हारे लिये अब यही उचित है कि तुम हमारे राज्यसे बहुत शीघ्र चले जाओ। यह सुन भोला चित्रसेन उठ बैठा। पिताको अन्तिम प्रणाम कर अपनी माताके पास आया, माताके पैरोंपर सिर रख दिया और पिताकी आज्ञा माताको सुनाई। यह सुनते ही माताके सिरपर वज्रसा टूट पड़ा, पर राजाकी आज्ञा अनिवार्य थी, वह टल नहीं सकती थी। माताको भी अन्तिम प्रणाम कर चित्रसेन चल दिया—माताने चित्रसेनको जाते समय सात रत्न और रास्तेमें खानेके लिये कुछ कलेवा देदिया था।

मातासे विदा हो हाथमें तलवार ले चित्रसेन राजकुमार अपने मित्र-मंत्रीपुत्र रत्नसारके घर गया। राजकुमारको अपने घर आया देख रत्नसारको बड़ा आनन्द हुआ। उसने अपनेको कृतकृत्य माना-कहने लगा-मित्र! मैं धन्य हूं, सचमुच मेरा जन्म आज सफल होगया। क्योंकि आज आपने कृपाकर मेरे घरको अपने शुभागमनसे पवित्र किया।

रत्नसार चित्रसेनके मुँहकी उदासीनतासे बातको ताड़ गया। राजकुमारके अकस्मात् आनेका कोई विशेष कारण अवश्य है। रत्नसारसे न रहा गया। उसने धर ही तो पूछा-मित्र! आप आज इस तरफ कैसे आये। आज आपका चहरा उदाससा मालूम पड़ता है, जो कुछ बात हो मुझसे स्पष्ट कह दो। क्योंकि नीतिकारोंका भी कहना है कि-"विश्वासपात्र मित्र, गुणी सेवक, प्रेमवती स्त्री, और सहृदय स्वामीसे अपने दुःखको प्रगट कर मनुष्यको सुखी होना चाहिये।"

रत्नसारकी बात सुनकर चित्रसेनने सब वृत्तान्त कह डाला। और अन्तमें कहने लगा-मित्र रत्नसार! मैं जबतक विदेशसे न लौटूं तबतक तुम सुखसे यहीं रहना, बस मैं यही कहने तुम्हारे पास आया हूं। क्योंकि मेरे लिये तो जो कुछ भागमें बदा है होगा ही, तुम मेरे लिये किसी प्रकार दुःख मत उठाना। यह सुन रत्नसारको बड़ा दुःख हुआ। वह कहने लगा-मित्र चित्रसेन! भला विना प्राणोंके भी

कहीं शरीर रह सकता है ? तुम हमारे प्राण हो, तुम्हारे विना मैं क्षणभर भी तो रह नहीं सकता, चाहे सुख हो या दुःख, हम और तुम उसे मिलकरके ही भोगेंगे।

इस विचारसे वे दोनों मित्र-राजकुमार और मन्त्रिपुत्र अपने देशको छोड़कर गुप्तरीतिसे विदेशके लिये चल दिये।

पुत्रको देशनिकाला दे महाराज राजदरबारसे रनवासमें गया। रानी तो पहले ही शोकातुर होरही थी, राजाके आनेपर उससे न रहा गया, वह बड़े जोर२ से रोने लगी। उसे रोती देख परवारके लोग भी रोने लगे, इस समय राजाका भी धैर्य जाता रहा, वह भी बार २ रोने लगा। रानी तो बेहोश होगई, जैसे तैसे शीतोपचारसे होशमें आई। पर पुत्रका वियोग भूला नहीं, वह दिनोंदिन दुबली होती जाती थी, निरन्तर यही रटा करती थी-हाय पुत्र ! कुल-दीपक !! महाभाग !!! तुमपर दैवने बड़ा कोप किया। मुझे छोड़कर तुम कहां चल दिये, तेरे विना इस राजमहलमें कैसे रहूं ? राजाने विना विचारे तुम्हें निकालकर अच्छा नहीं किया। मेरा दुःख तो दूर रहा, राजा स्वयं भी निःसन्तान (निपूत) से होगये, विना पुत्र उनकी शोभा नहीं।

इस नगरके लोग बड़े दुष्ट-अविचारी हैं। इन्हें मनुष्य नहीं हलाहल विष कहना चाहिये, क्या संसारमें सुन्दर होना पाप है ? अगर उनकी मनचली स्त्रियां उसकी तरफ देखती थीं, उसे निहारती थीं, उसे देखकर कामसे पीड़ित होने

लगती थीं, तो यह दोष उन अलबेली ललनाओंका था कि सुन्दर राजकुमारका—मेरे इकलौते बेटेका।

जो मनुष्य अपने अपवादके भयसे दूसरेके झूठे दोषोंको प्रगट करते हैं, वे लोकमें निन्दनीय हैं-वे सदाचारी नहीं कहे जासकते। असल बात तो यह है कि लोगोंको उसका सुन्दर होना अच्छा नहीं लगा। भगवन्! किस पापके उदयसे मुझे पुत्रका वियोग सहना पडा? मैंने कभी स्वप्नमें भी देव, शास्त्र, गुरुकी अवज्ञा नहीं की, कभी अनादरकी दृष्टिसे नहीं देखा। सदा ही जिनधर्मका पालन किया—कुछ जाना नहीं जाता, कर्मोंकी विचित्र गति है। इस प्रकार विलाप कर हृदयको पत्थरका बनाकर महारानीने पुत्रका वियोग सहा।

इधर राजकुमार चित्रसेन और मंत्रीपुत्र रत्नसार दोनों मित्र मार्गकी प्राकृतिक शोभा, ग्रामीण लोगोंके समुदाय, वनमें रहनेवाले भीलादिक, निर्मल जलसे भरी नदियां, उनमें किलोलें करते हंस हंसिनी अनेक पक्षीगणको देख प्रसन्न होते थे, रास्तेकी थकावट दूर करते थे।

इस तरह चलते २ दोनों मित्र एक बड़े भारी जंगलमें आपहुँचे। जंगल बड़ा सघन था, सूर्य अस्त होगया था। इसलिये वे दोनों वहीं ठहर गये, दोनों थके तो थे ही। राजकुमार एक वृक्षके नीचे सोगया, पर रत्नसार नहीं सोया-जागता रहा। उसने कुछ दूरीपर किन्नर जातिके देवोंका

मधुर गान सुना। रत्नसारको बड़ा अचंभा हुआ। उसने राजकुमारको जगाया। उसने भी बाजे और गानेकी मधुर ध्वनि सुनी। राजकुमार कहने लगा-रत्नसार ! तुम तो रहो यहीं, और मैं इसका पता लगाकर अभी आता हूं। रत्नसार कहने लगा—

राजकुमार ! राजकुलालंकार !! जंगल बड़ा भयानक है, मनुष्यका तो नामनिशान नहीं है। जहांतहां सिंह, बाघ आदि हिंसक जंतु घूमते हैं, ऐसी काली रातमें अकेला तुम्हें वहां जाना उचित नहीं है ! राजकुमार बोला-सच है, पर मैं क्षत्रिय कुलोत्पन्न वीर बालक हूं। हम लोगोंको ऐसी साधारण बातोंमें भय नहीं लगता। ऐसा कहकर राजकुमार जिधरसे गानेकी आवाज़ आ रही थी उसी तरफ चल दिया। साथ २ रत्नसार भी चला। कुछ दूर चलकर बड़ा ही रमणीय एक जिन चैत्यालय दिखाई दिया। वहां चारों निकायोंके देवोंका खासा जमाव होरहा था। घण्टा, झालर, छत्र, चमर आदि देवोपनीत उपकरणोंसे चैत्यालयकी शोभा वर्णनातीत थी। अष्टाह्निक महापर्वका समय था, किन्नर जातिके देव गान करते थे। देवांगनायें नृत्य करती थीं तथा और देव मृदंगादि बाजे बजाते थे। इन्द्रादिक देव महापूजा करते थे।

चैत्यालयकी अद्भुत शोभा देख राजकुमार और रत्नसारका मन बड़ा प्रसन्न हुआ। रास्तेकी सारी थकावट

भूल गया, भक्तिरससे प्रेरित होकर जल्दीसे जिन चत्यालयमें चला गया और क्रमशः देवशास्त्र गुरुको नमस्कार किया, और मित्रके साथ वहीं बैठ गया। वहींपर मंडपमें एक तरफ एक परम सुन्दरी शुभ लक्षणयुक्त कन्याका चित्रपट (फोटो) लगा था। उसे देखते ही राजकुमार चित्रसेन उसपर मोहित होगया। उसे मूर्छा आगई, धरतीपर गिर पड़ा, बेहोश होगया। रत्नसारने शीतोपचार किया, जैसेतैसे उसे होशमें लाया। रत्नसारने राजकुमारसे मूर्छाका कारण पूछा। राजकुमार बोला-यह जो सामने चित्रपट लटक रहा है उसमें जिस कन्याका चित्र है वह मेरे दिलमें समा गई है। रत्नसार! तुम यह सच समझना कि यदि यह कन्या मुझे मिल गई, यदि मेरा इसके साथ विवाह होगया तो मेरा जीना होसकता है अन्यथा नहीं।

यह सुनकर रत्नसारको बड़ी चिन्ता हुई, यह दुःसाध्य मुश्किल काम कैसे होसकता है। न मालूम किसने यह चित्र किस प्रयोजनसे खींचा है। और यह किसका है तथा यहां किस मतलबसे लटकाया गया है। इस चित्रपटको देखकर यह निश्चय नहीं होता कि यह कोई मनुष्यकन्या है, या देवकन्या, अथवा विद्याधरकुमारी है। इस बातका भी तो पता नहीं कि यह अब जीवित है या नहीं।

राजकुमारने स्पष्ट ही कह दिया कि इसके विना मैं जी नहीं सकता, क्या करूं, मेरी तो अक्ल गुम होगई, बड़ा हैरान

हूं । इस चित्रपट लिखित कन्याका मिलना गधेके सींगोंको ढूढ निकालने, आगको ठंडा करने, पत्थर पर कमल पैदा करने, और आकाशसे कुसुम उत्पन्न करनेसे कम असम्भव नहीं। रत्नसार इसी प्रकार तर्क वितर्कमें उधेड़ बुनमें लगा था।

दैवयोगसे-पुण्य कर्मके उदयसे-समस्त प्राणियोंको आराधनीय, केवलज्ञानधारी अनन्तगुणोंके समुद्र, श्रुतसागर नामक मुनिराजका वहीं शुभागमन हुआ। मुनिराजकी परम शान्त मुद्रा स्पष्ट कह रही थी कि यह जितेन्द्रिय हैं। बाईस परीषहोंके सहन करनेवाले, शुद्ध चारित्र धारण करनेवाले, मूल और उत्तर गुणोंका पालन करनेवाले हैं, अपने ज्ञानरूपी सूर्यसे भव्यजन रूपी कमलोंका विकास करनेवाले, उन्हें धर्मोपदेश देनेवाले हैं।

मुनिराजके अतिशयसे-उनके पुण्य प्रतापसे सूखे वृक्ष लहलहा उठे। हरे २ पत्ते, कोंपल, फूल, और फल लग आये। रीते तालाब निर्मल जलसे भर गये, उनमें कमल खिल गये। परस्परमें विरोधी जीवोंने स्वाभाविक वैरभाव छोड़ दिया। केवली महाराजका आगमन सुनकर आस-पासके धर्मामृत पिपासु जन वहां आगये, सभा लग गई, सभामें चित्रसेन राजकुमार और मंत्रिपुत्र रत्नसार भी गया, केवलीकी सविनय वन्दना करके दोनों बैठ गये। केवलीने धर्मोपदेश रूपी अमृत वर्षासे भव्यरूपी चातकवृन्दको संतृप्त किया। धर्मोपदेश देकर मुनिराज चुप होगये। रत्नसारने

विनयपूर्वक प्रश्न किया। मुनिराज ! यह चित्रपट किसने किस निमित्त बनाया, दया कर इसका सब वृत्तान्त कहिये।

मुनिराज बोले—वत्स ! सुनो, मैं इसका सब वृत्तान्त कहता हूं। इसी भरतक्षेत्रमें कांचनपुर नामका एक विशाल नगर है। उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते हैं। उसी नगरमें चित्र निर्माण कलामें प्रवीण गुणाधार नामका एक चित्रकार रहता है। उसकी स्त्रीका नाम है गुणश्री।

वह रूपवती और सौभाग्यवती है। उसके पांच बेटे हैं और वे चित्रविद्यामें संसारमें प्रसिद्ध हैं। उनके क्रमशः यह नाम हैं—धनदेव; धनसार, गुणदेव, गुणाकर और गुण-सागर। गुणाधारने इन पांचोंको चित्र निर्माण कलामें निपुण बनाकर इनका विवाह भी कर दिया था। और सबको बरांबर २ सम्पत्ति देकर अलहदा कर दिया था।

इन सब भाइयोंमें पांचवां गुणसागर सचमुच गुणोंका सागर ही था, सबमें होशियार था और जैनधर्मका बड़ा अनुरागी था। इसकी स्त्री सत्यवती भी बड़ी मृदुभाषिणी पतिव्रता थी। गुणसागर चित्रकलासे लोगोंको प्रसन्न करता और सुखसे रहता था।

इसी भरतक्षेत्रमें एक रत्नपुर नामका नगर है। यह नगर बड़ा ही रमणीय है। इसमें त्रैलोक्यतिलक नामका एक जिन चैत्यालय है, चैत्यालयकी शोभा अवर्णनीय है, उसकी दीवालें स्फटिकमणिकी हैं, सोनेका शिखर और उसमें विविध रत्न

जड़े हैं, इस चैत्यालयमें श्री शांतिनाथ भगवानकी अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा है। नगरके बाग-बगीचे, सुन्दर२ ऊँचे मकान, साफ सुथरी गलियोंसे बड़ी शोभा थी। पद्मरथ नामका राजा इस रत्नपुरका शासन करता था। इसकी पद्मश्री रानी थी, यह रानी पतिव्रता और परम सुन्दरी थी। इस राजाके एक कन्या थी। इस राजकुमारीका नाम पद्मावती था। पद्मावतीकी सुन्दरतामें समानता करना संसारभरकी सुन्दरियोंके लिये मुश्किल काम था। अष्टमीके चन्द्रमाके समान मस्तक, तोतेके समान सुडौल नाक, शंख समान कान, नील कमल समान नयन, धनुषके समान तिरछी भौंहें, कुन्दरू फल समान अधर, कमलको लज्जित करनेवाला मुँह, भ्रमर समान काले २ बाल, चन्द्रमाके समान गोल २ गाल, कमल नालके समान भुजा, उन्नत सुडौल स्तन. सिंह समान पतली कमर, गजेन्द्र समान गति, जपा कुसुमके समान लाल २ पांवके तलुवे, और कोयलकी आवाजको मात करनेवाला स्वर था। हावभावमें चाल ढालमें अप्सराओंको छकानेवाली राजकुमारीने कुमार अवस्था छोड़कर यौवन अवस्थामें पदार्पण किया। इसका जिनधर्ममें बड़ा अनुराग था, दृढ़ विश्वास था।

उसके देखने मात्रसे लोगोंका मन कामातुर होजाता था। वह साक्षात् लक्ष्मी या कामदेवप्रिया रतिका अवतार थी। राजकुमारीकी यौवन अवस्था देख पद्मरथ महाराजको उसके विवाहकी चिन्ता हुई, विचारा कि अब इसे अविवाहित

रखना उचित नहीं इसलिये अब इसका किसी योग्य वरके साथ विवाह कर ही देना चाहिये। विद्वान्, शूरवीर, कुलीन, सच्चारित्र और जिनधर्म परायण, योग्य वरके मिलनेपर पद्मावतीके विवाहका निश्चय किया।

राजा योग्य वरकी तलाशमें रहने लगा, देश देशांतरोंसे अनेक सुन्दर युवा राजकुमारोंके चित्रपट मंगाये, और पद्मावतीको दिखाये, पर राजकुमारीको कोई भी राजकुमार पसन्द नहीं आया।

सैकडों हजारों चित्रपट दिखाये गये पर एक पर भी राजकुमारीका चित्त स्थिर नहीं हुआ। प्रत्युत पुरुषोंसे उसे एक तरहका वैरसा होगया। वह "पुंद्वेषिणी" होगई। कन्याकी यह दशा देखकर राजा रानी तथा परिवारके लोगोंको बड़ा ही उत्ताप हुआ।

कुछ दिनों बाद वही गुणसागर चित्रकार, अपनी स्त्री और मित्रोंके साथ शान्तिनाथ भगवानकी वन्दनाके लिये रत्नपुर नगरमें आया। शान्तिनाथ भगवानके डी भक्तिसे अभिषेक किया, बादमें पूजा करने लगा। इतनेहीम मात्रसे द्वेष रखनेवाली पद्मावती कुछ सहेलियोंको साथ ले, हाथमें तलवार ले, सिंह समान गरजती, लोगोंको भय पैदा करती हुई देवदर्शनके लिये चैत्यालयमें आई। उसका भयंकर रूप देखकर लोग डरकर इधर उधर भागने लगे। क्या है? क्या है? इस तरहका कोलाहल मच गया।

सब लोगोंको बड़ी शंका होगई। वे कहने लगे कि यह कोई देवता है, राक्षसी है या दानवी है ? क्या है ? कुछ समझमें नहीं आता। डरके मारे सब लोग भाग गये पर गुणसागर चित्रकार तो नासादृष्टि लगाये ध्यानमें मग्न था, यह सब कोलाहल सुनकर भी ध्यानसे विचलित नहीं हुआ। होता ही क्यों, जो जिनेन्द्रके ध्यानमें लीन है उसे भय ही किस बातका ? जिनेन्द्रध्यानीको तो यमराजका भी डर नहीं।

ध्यान कर चुकनेपर गुणसागरकी दृष्टि राजकुमारीपर पड़ी। यद्यपि गुणसागर पवित्र हृदय था पर कन्याके सौंदर्यपर मुग्ध होगया। ग्रन्थकार कहते हैं कि इन स्त्रियोंने किसके मनको डावांडोल नहीं किया ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश तकको इन्होंने अछूता नहीं छोड़ा, धन्य हैं वे महात्मा जो इनके जालमें नहीं फँसे।

गुणसागरको राजकुमारीका सब वृत्तान्त मालूम होगया। उसने विचारा कि राजकुमारीने पुरुषोंसे आजन्म वैर ठान अच्छा नहीं किया। कहां तो यह महादुर्लभ सौन्दर्य और कहां पुरुषोंसे द्वेष ? छिः छिः !! विना पुरुषके सौंदर्यादि गुणोंहीसे क्या होता, सब व्यर्थ है। जिस मोतीपर पानी ही नहीं वह किस कामका ? सूर्यका यदि उदय ही न हो तो संसारमें उसका उपयोग ही क्या ? विना दीपकके घरमें अंधेरा रहता है। विना पुत्र जैसे कुलकी शोभा नहीं-वैसे ही विना भर्तारके

सुन्दर युवतियोंकी शोभा नहीं। गुणसागर इसी विचारमें लीन था। राजकुमारी शांतिनाथ भगवानकी वन्दना कर राजमहलमें चली गई। गुणसागर भी यात्रा कर सपरिवार अपने घर लौट आया। उसी गुणसागरने उस कन्याका यह हूबहू चित्रपट खींचा है, तथा अपनी चित्रकलाका चमत्कार दिखानेके लिये प्रसिद्ध २ स्थानोंमें एक २ चित्रपट लगा दिया। यही सब इस चित्रपटका वृत्तांत है।

चित्र-लिखित राजकुमारीका हाल सुनकर राजकुमार फिर भी मूर्छित होगया। रत्नसार उसे फिर जैसे तैसे होशमें लाया। रत्नसारने फिर भी केवली महाराजसे पूछा-मुनिराज ! दयाकर यह और बतलाइये कि यह हमारा मित्र इस चित्रपटको देखकर बार २ मूर्छित क्यों होजाता है ? मुनिराज बोले, सुनो—

इसी भरतक्षेत्रमें द्राविड देश है, उसमें चम्पा नामकी बड़ी मनोहर नगरी है। उसीके पास एक परम सुन्दर चम्पक वन है। उस वनमें सब ऋतुओंके सर्व प्रकारके फल फूल लगे हैं। उनपर भ्रमरगण उन्मत्त होकर गुंजार करते हैं, पक्षीगण मधुर शब्द करते हैं, वृक्षोंकी सघन छायामें पथिकगण विश्राम कर आनन्दित होते हैं, संसारसे परम उदासीन मुनिजन उसी वनमें ध्यान निमग्न हो दुर्मोच कर्मोंका नाश करते हैं।

उस चम्पक वनमें निर्मल जलसे भरा, बिलकुल गोल,

खिले कमलोंसे शोभित एक तालाब है। तालाबके किनारे सुन्दर २ घाट और सुडौल सीढियां बनी हैं। हंस, चकवा, बगुला और सारस वगैरह नाना पक्षीगणका श्रवणसुखद कलरव बड़ा सुहावना मालूम पड़ता है। तालाबके बँदपर नाना जातिके पेड लगे हैं।

एकदिन इसी सरोवरके निकट एक साहूकार व्यापारी बहुत आदमियोंको साथ लिये आया और वहीं डेरा डाल दिया, तालाबके शुद्ध जलसे नहाकर जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की, रसोई तैयार की गई, साहूकार तालाबके बँदपर खडा हो, हाथमें शुद्ध जल ले किसी अतिथिकी बाट जोहने लगा। पुण्योदयसे मासोपवासी मुनिराजका शुभागमन हुआ, साहूकारने मुनिराजकी पड़गाहना की और नवधाभक्तिसे आहार दिया, आहारदानके माहात्म्यसे पञ्च आश्चर्य हुये, यह देख लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ।

आहारदानके समय एक वृक्षपर हंस और हंसिनी बैठे थे उन्होंने हृदयसे मुनिको दिये आहारदानकी अनुमोदना की। ग्रन्थकार कहते हैं कि दान देनेसे जितना पुण्य होता है दानकी अनुमोदना करनेसे भी उतना ही पुण्य होता है। इसलिये जो श्रावक दान देनेमें असमर्थ हैं उन्हें शुद्ध हृदयसे दानकी अनुमोदना करना चाहिये। मुनिको आहार देनेसे उस साहूकार और हंस दम्पतिको बराबर पुण्य हुआ।

आहार लेकर मुनिराज तो विहार कर गये, पर हंस

दम्पती उसी पेड़पर बैठे रहे। हंसनी गर्भवती थी, उसने उसी वनमें एक विशाल वट-वृक्षपर पुत्ररत्न उत्पन्न किया। दोनों पति-पत्नी आनन्दसे दिन काटते और शिशु-पालन करते थे, वहुत दिन इसी तरह सुख भोगते वीत गये, पर उन्हें मालूम नहीं हुए।

उनके अशुभ कर्मके उदयसे उस वनमें आग लग गई, सारा बन झार २ जलने लगा, आगकी लपट बढ़ती गई। ठीक वहांतक पहुँच गई, जहां वह हंस कुल निवास करता था। तब तो हंसनी घबराकर बोली-प्राणनाथ! जैसे बने बच्चेकी रक्षा करनी चाहिये। जाओ, कहींसे पानी लेआओ जिससे आसपासकी आग बुझाकर बच्चोंके प्राण बचाऊं। हंस पानी लाने गया, माता बच्चेके पास रही, हंसको पानी लानेमें कुछ देर लगी। हंस बिचारा आ ही नहीं पाया, और आग बढ़ते २ बच्चेके ठीक घोंसले तक पहुंच गई। बेचारी हंसी विचारने लगी, न मालूम वे कहां चल दिये, अभीतक नहीं आये, और वे ऐसी विपदामें आते ही क्यों? सचमुच पुरुष जाति मौकेपर बडी परुष-कठोर होजाती है। ऐसी हालतमें, इस मरणासन्न दशामें, वास्तविक प्रेमशून्य, वह कायर कहीं चल दिया, ऐसे पौरुषको शतवार-सहस्रवार धिक्कार। वास्तवमें मनुष्य निर्दयी और निपट निठुर होते हैं, इन पापियोंका मुंह भी देखने लायक नहीं-देखते २ हंसिनी और उसके बच्चेको जला डाला। सो हे रत्नसार!

मुनिके आहारदानकी अनुमोदनासे हंसिनीने मानुष भव पाया और वह रत्नपुर नगरमें पद्मरथ राजाकी पद्मश्री रानीके गर्भसे यह पद्मावती कन्या उत्पन्न हुई। और सुनो—

हंस तत्काल पानी लेकर उसके पास आया, उसने अपनी स्त्री और बच्चेको मरा पाया। हंसको दोनोंके मरनेका बड़ा दुःख हुआ, उसने विचारा कि अब संसारमें जीना वृथा है, अतिशय शोकके कारण थोड़ी ही देरमें हंस भी मर गया। और उस दानकी अनुमोदनाके फलसे वह हंस वीरसेन महाराजका चित्रसेन राजकुमार तुम्हारा मित्र उत्पन्न हुआ। ग्रन्थकार कहते हैं कि सत्पात्रमें दिये दानकी अनुमोदना करनेसे दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति भी सुलभ होजाती है।

मुनिराजके इस प्रकार वचनोंको सुनकर राजकुमारको पूर्वजन्मका जाति-स्मरण होगया। पूर्वजन्मकी सब बातें एकके बाद एक याद आने लगीं।

राजकुमारने मुनिराजके चरणकमलोंकी हाथ जोड़कर वन्दना की।

ग्रन्थकार कहते हैं कि जैसी होनहार होती है सामग्री भी वैसी ही मिल जाती है। उस वनमें साहूकारका आना, मुनिराजको दान देना, हंस-हंसनीका अनुमोदना करना, वनमें आग लगना, हंसनी और बच्चेका तथा हंसका मरना, हंस-हंसनीका राजकुमार और राजकुमारी होना, उपर्युक्त विषय प्रमाणं हैं।

द्वितीय परिच्छेद समाप्त।

तृतीय परिच्छेद।

राजकुमारने मुनिराजको प्रणाम कर विनयसे कहा—भगवन्! दयाकर इतना और बतलाइये कि उस राजकुमारीकी प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मुनिराजने कहा-राजकुमार! वह राजकुमारी तो पूर्वजन्मके वैरसे पुरुषोंकी निन्दा करती, उनका मुंह भी नहीं देखती। हां, स्त्री जातिपर उसकी बड़ी ममता है। उन्हें वह चाहती और बड़ा आदर सत्कार करती है। राजकुमारने पूछा कि राजकुमारीको पुरुषोंसे इतना द्वेष क्यों है? मुनिराजने कहा—सुनो, पूर्वजन्ममें जब कि वह हंसिनी थी उसका पति हंस अपने प्यासे बच्चेके लिये पानी लेने गया था। हंस पानी लेकर आने ही नहीं पाया था कि बनमें आग लग गई, हंसिनी और उसके बच्चे वहीं तड़फ २ कर मर गये। उसी समयसे हंसिनीको पुरुषोंसे द्वेष होगया, और यह धारणा इतनी प्रबल हुई कि इस जन्ममें भी और युवा अवस्था प्राप्त होनेपर भी पुरुषोंका मुंहतक नहीं देखती, वह अभीतक कन्या है, इस बातका उसके मातापिताको बड़ा कष्ट है।

हां, इसका एक उपाय है और वह यह कि यदि उसको पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त एक चित्रपट पर लिखकर किसी तरह दिखाया जाय तो उसे अवश्य ही जातिस्मरण हो जायगा, पूर्वजन्मकी सब बातें याद आजांयगी, और वह पुरुषोंसे द्वेष करना छोड देगी, और विवाह करनेपर भी राजी होजावेगी।

इस उपायको सुनकर चित्रश्रेणिको बडी प्रसन्नता हुई। मुनिराजको नमस्कार कर चित्रश्रेणी और रत्नसार दोनों रत्नपुरकी ओर चले, मार्गकी प्राकृतिक शोभा देखते हुये दोनों रत्नपुरके निकट पहुंचे। संध्या होचुकी थी, और दोनों थके भी थे, तथा नगरका मुख्य द्वार बन्द भी होचुका था। इसलिये वे दोनों नगर द्वारके बगलमें टिक गये। उस दरवाजेके ऊपर एक रसोईघर था, और उसमें एक धनद नामका यक्ष रहता था, वह बडा सम्पत्तिशाली था। अनुचर देव और देवाङ्गनाओंसे वह हर समय घिरा रहता था। हरएक महीनाकी कृष्ण चतुर्दशीकी रातको व्यन्तर जातिके देव उस धनद यक्षके पास आया करते थे, आकर गाते बजाते थे, आमोद प्रमोद करते थे, इसी नियमानुसार उस रातको भी वे आये, संगीतका प्रारम्भ होगया, मृदङ्गकी ध्वनि गूञ्ज उठी। यह मधुर ध्वनि चित्रश्रेणिके कानों तक पहुंची और उसकी निद्रा भंग हुई। वह जाग उठा, हाथमें तलवार लेकर चित्रश्रेणि चला और पासहीमें यक्षेन्द्रकी सभाको देखा।

सब देव सभ्य वेषमें बैठे थे, कोई सितार, कोई वीणा और कोई मृदङ्ग बजा रहा था, और कोई मीठी सुरीली आवाजसे तान छेड रहा था, तथा कोई नाच रहा था, यह सब बातें चित्र-श्रेणि दूर खडा होकर देख रहा था। वह कौतुहलवश सभामें जा बैठा। कन्दर्प-सुन्दर, राजकुमारको

देख देवगण आश्चर्यमें पड़ गये, एक दूसरेसे कहने लगा–क्या, यह कोई देव है या कामदेव हैं ? कुछ समझमें नहीं आता। इतनेमें धनंजय नामका यक्ष बोला–कोई हो वह हम सबका अतिथि पाउना है। सब देवोंने राजकुमारका बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। उन सब देवोंका नायक धनद यक्षेन्द्र भी राजकुमारको देख बड़ा प्रसन्न हुआ। कुछ मनमें विचार कर कहने लगा–राजकुमार! तुम अपनी इच्छानुसार वर मांगो! राजकुमारने यक्षेन्द्रकी बात सुनकर बड़ी नम्रतासे कहा–यक्षेन्द्र! आपके दर्शनसे आज मेरा जन्म सफल होगा, तुमसे मिलकर मैं अपनेको धन्य समझता हूं। मैं आपके इस शिष्ट व्यवहारसे ही सन्तुष्ट होचुका। मैं अब और कोई वर नहीं चाहता। यक्षेन्द्र भी राजकुमारके विनीत व्यवहारको देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अन्तमें यक्षेन्द्रने राजकुमारकी इच्छा न रहनेपर भी यह वरदान दिया कि–"संगरे विजयी भव" तुम युद्धमें विजयी होंगे। इस आशीर्वादको पाकर प्रसन्न होता हुआ, अपने मित्र रत्नसारके पास लौट आया। उसे जगाकर सब हाल सुनाया। इधर सवेरा भी होगया था, दोनों वहांसे चलकर बीच नगरमें आगये। और नगरकी दर्शनीय वस्तुओंको देखने लगे। इसी समय पद्मरथ राजाने राजकुमारीके विवाहके लिये घोषणा-डोंडी पिटवाई कि जो कोई मेरी कन्याका पुरुषोंसे द्वेष करना मिटा देगा उसीके साथ अपनी राजकुमारीका विवाह करूँगा। और अपना आधा राज्य भी उसको दूंगा। इस घोषणाको

सुनकर राजकुमारने रत्नसारसे कहा कि—मित्र! देखो जैसा मुनिराजसे सुना था वही बात है। अब मुझे निश्चय होता है कि जिस कामके लिये हम आये हैं उसमें अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी। हां, तो अब वह चित्रपट तैयार करा लेना चाहिये। ऐसा विचार करके दोनों एक चित्रकारके पास गये। और एक चित्रपट तैयार कराया, चित्रकार बड़ा चतुर था, उसने पूर्वजन्मकी उस घटनाका उल्लेख उस चित्रपटमें बड़ी ही खूबीसे किया। चित्रपटको लेकर गुप्त वेष बनाकर वे दोनों नगरमें गाते हुए घूमने लगे। उनका गाना मधुर तो था ही पर उस गानमें उस पूर्वजन्मकी घटनाके भावोंका भी समावेश था।

राजकुमारके इस गानचातुरीकी बात रत्नपुरनगरमें फल गई। लोग उसे उसका गाना सुननेके लिये घेरे रहते थे। पद्मावती राजकुमारीने भी उसकी संगीत कलाकी प्रशंसा लोगोंसे सुनी, इससे पद्मावतीने भी उस गायक राजकुमारको देखनेकी इच्छा की, और उन दोनोंको बुलवाया। वे दोनों राजकुमारीके बुलाने पर आये, और वह चित्रपट दिखलाया। उसे देखते ही राजकुमारीको चित्रश्रेणि पर अनुराग होगया। राजकुमारीकी यह दशा देख उसकी सहेलियां एक दूसरेका मुँह देखने लगीं। उन सबोंने यह निश्चय कर लिया कि यही महापुरुष, हमारी राजकुमारीके पुरुष–द्वेषको मिटायेगा।

राजकुमारीने उस चित्रपटको बड़ी उत्सुकतासे देखा। शोभायमान वह वन, प्रफुल्ल कमलसंयुक्त वह सरोवर, उसके

किनारे, घनी छायावाला अनेक पक्षीगणोंका आश्रय, वह बरगदका पेड़ और उसी पेड़के नीचे आगमें जलकर मरी हुई हंसिनी और उसके बच्चे, चोंचमें पानी लाकर हंसका आना, अपने बच्चे और बिचारी हंसिनीका जलकर मरना देख शोकातुर हो हंसका प्राण त्याग, यह सब देखकर राजकुमारीके हृदयपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। चित्रपटके देखते ही उसे मूर्छा आगई--अचेत होगई। यह हालत देख उसकी सहेलियां घबराईं। शीतोपचारसे जैसे तैसे मूर्छा दूर हुई होश आया, एक २ करके पूर्वजन्मकी सब बातें याद आने लगीं। उसको अब निश्चय होगया कि यह चित्रश्रेणि राजकुमार पूर्वजन्मका हंस है, मैं हंसिनी हूं, अपने बच्चेके बिना पानीके आगमें जलकर मर जानेसे तथा हंसके समय पर न आनेके कारण ही पूर्वजन्मकी प्रबल वासनासे मैं पुरुषोंसे द्वेष किया करती थी। यह सब बातें राजकुमारीने अपनी सहेलियोंको भी समझाईं।

राजकुमार ताड़ गया कि इसे जातिस्मरण होगया, सब बातें याद आगईं। कुछ विचार कर वे दोनों मित्र वहांसे चल दिये। राजकुमारीने सहेलियोंसे बात करनेके बाद सामने देखा तो उन दोनोंको वहां नहीं पाया, इससे उसे बहुत दुःख हुआ। बहुत कुछ पश्चात्ताप करनेके बाद सहेलियोंसे स्पष्ट कह दिया कि जिसतरह हो, उन राजकुमारका पता लगाना ही होगा। यदि वे मिल गये तो मैं जीवित रह सकूँगी अन्यथा मेरा मरण समझो। सखियोंने उसे बहुत समझा-

बुझाकर शांत किया, धीरज बन्धाया, उन्होंने कहा-आप निश्चय समझें हम राजकुमारके ढूंढ़नेमें किसी बातको उठा न रक्खेंगी, भरसक चेष्टा करेंगी।

उसी समय सब सहेलियां राजकुमारीके पिता महाराज पद्मरथके पास गंई। और पहिलेका सब वृत्तान्त ज्योंका सों सुना दिया। सब हाल सुनकर महाराज प्रसन्न हुए और उनसे कहा तुम घबडाओ मत, हम राजकुमारकी खोज करके अभी बुलाये लेते हैं। पद्मावतीको समझाकर धीरज बंधाओ। तत्काल महाराजने पद्मावतीके स्वयंवरकी तैयारी की। सब देशोंके राजा और राजकुमारोंको स्वयंवरमें आनेके लिये निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण पाते ही देश-देशांतरोंके राजे, महाराजे, और राजकुमार बड़े ठाटबाटके साथ रत्नपुरमें उपस्थित होगये। इधर पद्मरथ महाराजने बड़ा ही सुन्दर स्वयंबर मण्डप तैयार कराया। स्वयंवर मण्डपकी चारों दिशाओंमें चार दरवाजे थे, उनमें माला वन्दनवार लटकते थे। मण्डपके स्फटिक पत्थरके खम्भोंमें पंच वर्णके रत्न अपनी निराली छटा दिखाते थे। कहीं मोतियोंके और कहीं मूगोंके हार, मण्डपकी शोभाको बढ़ा रहे थे। कहीं वेला-चमेली, केतकी और जुहीके नव-पुष्पोंकी सुगन्धि थी, उनपर भौंरे गूँज रहे थे। कहींपर बनावटी डोंगी, मछलियां और चकवा आदि मनको आनन्दित करते थे। कहींपर रत्नोंके अर्धचन्द्र, पूर्णचन्द्र, अर्धसूर्य, पूर्णसूर्यके प्रतिबिम्ब और कहींपर विचित्र रत्न निर्मित नक्षत्र माला शोभायमान थी। कहींपर एकसे

एक बढिया पताकायें फहरा रही थीं। इस मण्डपकी शोभाके सम्बन्धमें इतना कह देना बस होगा कि वह साक्षात् एक देव विमान जैसा सुन्दर बना था। मण्डपमें बहुतसी वेदीं और उन वेदियोंपर एक २ सुन्दर मंच-सिंहासन बिराजमान था। चारों तरफ अगुरुधूपके घडे रक्खे थे, जिससे समस्त मण्डप सुगन्धिमय होरहा था। अब स्वयंवरका समय होगया, नियत समयपर राजा, महाराजा, और राजकुमारगण आने लगे। उनसे मण्डपकी शोभा देखते ही बनती थी। वे समझे मानों साक्षात् स्वर्ग ही पृथिवी तलपर आगया। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह सच है कि अनौखी चीजको देखकर सभीको आश्चर्य होता है। इसी प्रकार शोभा देखते हुए राजागण अपने २ सिंहासन पर बिराजमान होगये। मण्डपमें कहींपर संगीत और कहींपर नृत्य होरहा था। नानाप्रकारसे आगत स्वागतसे राजाओंका मनोविनोद किया जारहा था। इसी अवसरमें पद्मावती राजकुमारीके पिता-पद्मरथने स्वयंवर मण्डपमें एक बडा विशाल देवरक्षित धनुष लाकर रख दिया और उपस्थित सभ्योंको लक्ष्य करके कहा-आप सबमेंसे जो कोई भी इस धनुषको चढावेगा वही इस रूपवती मेरी कन्याका पति होगा!

महाराज पद्मरथ इतना कहकर चुप होगये। सब राजाओंको अपनी धनुष विद्याका बड़ा गर्व था, कहने लगे- इस साधारण धनुषको चढ़ानेकी बात ही कितनी है। राजागण धनुष चढ़ानेकी तैयारी करने लगे। इधर राजकुमारी पद्मावती

भी मनोज्ञ वेष धारण कर, सोलह शृंगारसे सुसज्जित, सुन्दर वस्त्रोंको धारणकर सहेलियोंके साथ स्वयंवर मंडपमें आईं। पद्मावतीका मुख सुन्दर तो था ही पर होठोंपर पानकी लालीसे उसकी शोभा दूनी होगई थी। ताजे फूलोंकी माला पद्मावतीके करकमलोंकी शोभा बढ़ा रही थी जब राजकुमारी बीच मण्डपमें पहुंची तब धात्रीने पद्मावतीको उपस्थित राजाओंका परिचय दिया, देखो राजकुमारी ! यह लाट देशके अधिपति हैं। कितने ही बड़े२ राजे इनके आधीन हैं, यह कर्णाटक देशके स्वामी हैं। जैसे यह रूपवान हैं वैसे ही गुणी भी हैं। इस प्रकार उस धात्रीने एक २ करके सब राजाओंका परिचय देदिया। उनका नाम, गुण, प्रताप, और कुल आदि बतलाकर धात्रीने यह भी कह दिया कि राजकुमारी ! इन राजाओंमेंसे जो तेजस्वी राजा इस धनुषको चढ़ावे, उसीके गलेमें वरमाला डाल देना। इतना कहकर धात्री चुप होगई। राजकुमारी भी अपने नियत स्थानपर जा बैठी। अब तो धनुष चढ़ानेकी बारी आई।

पहले पहल लाट देशके महाराज साहसकर धनुषकी ओर बढ़े, पर वहां पहुंचते ही वे दृष्टिविहीन-अन्धे होगये, उन्हें यह भी मालूम नहीं हुआ कि धनुष कहां रक्खा है। इनकी यह दशा देख दूसरे राजाओंको हँसी विना आये न रही। तब तो लाटाधिपति बड़े लज्जित हुये, झेंपके मारे लौटकर अपने आसनपर लौट आये। इनके बाद कर्णदेशके महाराज आये और उन्हें धनुषके पास बड़ा भारी नागराज दिखाई

दिया, मारे डरके यह भी ज्योंके त्यों लौट आये। इसीप्रकार और भी कितने ही राजोंने धनुष चढ़ानेका साहस मात्र किया, पर कोई धनुष चढ़ानेमें सफल न हुआ। फिर उपस्थित राजा परस्परमें बातें करने लगे कि पद्मरथका यह धनुष क्या है हम लोगोंका साक्षात यह काल है। हम लोगोंके मारनेका यह आयोजन-तैयारी है। कन्या बड़ी ही रूपवती है रहै, ऐसी कन्याको दूरसे नमस्कार! इत्यादि बातें कर सब चुप होगये, सभामें सन्नाटा छागया। इधर पद्मरथ महाराज यह सब देख बड़े शोकातुर हुए भारी उलझनमें पड़े। मनमें विचारा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ नहीं जान पड़ता है पद्मावतीको अविवाहित ही रहना पड़ेगा। पद्मावतीके हृदयमें भी गहरी चोट लगी, उसने विचारा मेरे अशुभ कर्मके उदयसे स्वयंवर रचना निष्फल हुई।

मेरी आशा निराशामें परिणत हुई, उस प्राणवल्लभका दर्शन न हुआ, भवितव्य बड़ा प्रबल है। इसी विचारसे कन्या चुपमारके रह गई। इस स्वयंवर मण्डपमें चित्रश्रेणि राजकुमार अपने मित्र रत्नसारके साथ गुप्त-वेषसे बैठे थे। यह सब घटना देख मित्रसे बोले-देखा यह तमाशा? किसीका साहस धनुष चढ़ानेका न हुआ, सब राजा खेद-खिन्न हो बैठे हैं। मुझे आशा नहीं कि यह धनुष चढ़ा सकेंगे, अब मेरी इच्छा है कि मैं धनुष चढ़ाऊँ। मुझे आशा है मैं धनुष चढ़ाकर सफलता प्राप्त करूँगा, कार्यसिद्धि अवश्य होगी। रत्नसारने राजकुमारको प्रोत्साहित किया। राजकुमार धनुषके पास

गया। पंचपरमेष्ठीको नमस्कार कर बातकी बातमें धनुष चढा दिया। धनुषके चड़ानेसे समुद्रके समान भयंकर गर्जना हुई, जीव जन्तुओंमें बड़ा कोलाहल मचा। हाथी, घोडे, गाय, भैंस आदि बन्धन तोड़कर जंगलकी ओर भाग निकले, बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। यह सब वृत्तान्त देख पद्मावतीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने चित्रश्रेणि राजकुमारके गलेम वरमाला डालदी। पर यह बात और राजोंको अच्छी न लगी। वे कहने लगे—जिसके कुल जातिका कोई पता नहीं, कहांका है, कौन है, इसका आचार विचार कैसा है, इन बातोंका किसीको पता नहीं, फिर इसके गलेमें वरमालाका डाला जाना ठीक नहीं। वास्तवमें यह अपरिचित व्यक्ति इस कन्या-रत्नके पाने योग्य नहीं है, ऐसा विचार कर सब राजा चित्रश्रेणिसे लड़नेको तैयार होगये, रणदुंदुभी बजने लगी, युद्ध घोषणा होगई। हाथोंमें हथियार ले लेकर, कोई घोड़ेपर, कोई हाथी पर, कोई रथपर चढ़कर, तथा कितने पैदल ही युद्ध भूमिमें आडटे। इस तरफ चित्रश्रेणि और उसका एक मात्र मित्र रत्नसार था। यह बात पहले ही कही जाचुकी है कि चित्र-श्रेणिको धनद यक्षेन्द्रने युद्धमें विजयी होनेका स्वयं वरदान दिया था। इसलिये रत्नसारके अतिरिक्त चित्रश्रेणिके पक्षमें यक्षेन्द्र या उसका वह वरदान और भी था। उस तरफ बहुतसे राजा और उनकी अगणित सेना थी, तथापि चित्र-श्रेणि निर्भय हो, उस असंख्य वीर वाहिनीके प्रवाहमें आ कूदा। इसे देखते ही सब राजाओंने मिलकर उसपर इतनी

बाणवृष्टि की कि जिससे आकाश छागया, घोर अन्धकार ही अन्धकार चारों तरफ दिखाई देता था। तौभी कोई तलवार, कोई भाले, कोई गदा और कोई परशु प्रहार करते ही जाते थे, बड़ा भयंकर संग्राम मचा। इधरसे चित्रश्रेण भी सिंह समान गरजता हुआ उन सबोंपर एक ही वार टूट पडा। इसने ऐसा विकट पराक्रम दिखाया कि राजाओं और उनकी सेनाओंके छक्के छूट गए। थोड़ी ही देरमें सब लोग मैदान छोड तितर वितर होगए, जिधरसे रास्ता पाया उधर हीको भाग निकले। किसीको चित्रश्रेणिका सामना करनेका साहस नहीं हुआ। देखते २ युद्ध-स्थल खाली होगया। सब राजाओंकी हार और चित्रश्रेणिकी बड़े महत्वकी जीत हुई।

महाराज पद्मरथ भी यह सब खड़े २ देख रहे थे, इतने हीमें एक भाटने आकर चित्रश्रेणिकी बिरुदावलीका वर्णन इस प्रकार किया:—

"वसन्तपुरके महाराज वीरसेनके वीर पुत्र-युवराज चित्रश्रेणिकी जय हो, आपके प्रतापका संसारमें विस्तार हो और आपका निर्मल यश फैले।" भाटके मुँहसे चित्रश्रेणिका इस प्रकार परिचय पाकर महाराज पद्मरथके हर्षकी सीमा न रही। महाराजने सब राजोंको इकट्ठा किया और एक सभा की तथा भरी सभामें युवराज चित्रश्रेणिका सबको परिचय दिया तब तो सब राजोंको दांत तले अंगुली दबानी पड़ी। उन्होंने कहा—सच है, क्षत्रियोंको छोड़कर ऐसा बल-

पराक्रम और हो ही कहां सकता है। राजोंको अपने किये पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ, पर उसके परिचयसे राजोंको भी कम प्रसन्नता न हुई। युवराजको बड़ी आदरकी दृष्टिसे देखा और अपने अपराधोंकी क्षमा मांगी। इस घटनासे पद्मरथको बडा आनन्द हुआ। बड़े समारोहके साथ पद्मावती कन्याका चित्रश्रेणि युवराजके साथ विवाह किया। नगरके लोगोंको भी बडा आनन्द हुआ। सारे नगरमें कहीं गाना, कहीं नाच और कहीं बाजोंकी मनोहर ध्वनि होरही थी। नगरके सब लोगोंको निमन्त्रित किया, बड़े आददसे भोजन कराया और उचित सम्मान किया यथायोग्य भेट दी। चित्रश्रेणि युवराजको भी दहेजमें हाथी, घोडे, रथ, विविध प्रकारके वस्त्र, सुवर्णके अलङ्कार और अपना आधा राज्य भी दिया। स्वयंवरमें आये हुये समस्त राजोंका भी महाराजने यथोचित सत्कार किया और उनकी विदा की। याचकोंको मनमाना दान दिया और उन याचकोंने भी महाराज और वर-कन्याको शुभाशीर्वाद दिये। इस प्रकार विवाह कर्म समाप्त हुआ।

चित्रश्रेणि और पद्मावतीका पूर्वजन्मका सम्बन्ध तो था ही पर दोनोंको जातिस्मरण होनेके कारण, दोनोंमें असाधारण प्रेम होगया। महाराजने इनके रहनेको एक बड़ा विशाल भवन दिया था, इसीमें यह दम्पती रहते थे और संसारके सुखोंका अनुभव करते थे। इसी तरह रहते२ बहुत दिन बीत गये, पर इन्हें कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। रत्नपुरमें

इनका बड़ा सन्मान होता था। जो देखो वह यही कहता था कि महाराज पद्मरथके दामाद बड़े ही योग्य और सुशील पुरुष हैं, राज्यके सब लोग उनकी सुख कामना करते थे और शुभ आशीर्वाद दिया करते थे। ग्रन्थकार कहते हैं–हे भव्यो! यह सब पुण्यका फल है। चित्रश्रेणि राजकुमारकी पहिले क्या दशा थी, जंगलमें मारा मारा फिरता था पर उसके पुण्योदयसे उसे राजकुमारी और राज्यकी प्राप्ति हुई, संसारमें उसकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई, इसलिये मनुष्यको हर समय पुण्य कार्य करना चाहिये, हृदयके भावोंको उच्च बनाना चाहिये, हृदयमें कभी बुरी वासनाओंको स्थान न देना चाहिये। यही जिनेन्द्र भगवानका पवित्र उपदेश है।

तीसरा परिच्छेद समाप्त।



चतुर्थ परिच्छेद ।



चित्रश्रेणिने ससुरालमें बहुत समय बडे आनन्दसे विताया। एक दिन वह रातमें अकस्मात् जाग पडा। और वह इस प्रकार विचार करने लगा—मैं बहुत मजेमें हूं, मेरे पास सब तरहके सुखोंकी सम्पूर्ण सामग्री है हाथी घोडोंकी कमी नहीं, धन-सम्पत्ति भी अपार है, राज्य भी, और सब कुछ है, पर मुझे दुःख इस बातका है कि यहां रहनेसे मेरे माता-पिताका कुछ नाम नहीं हुआ। कोई उन्हें जानता भी नहीं। यहां मेरी प्रसिद्धि श्वसुरके नामसे है। जो कोई भी मुझे जानता है वह यही कहता है-हां, वे महाराज पद्मरथके दामाद हैं। मैं इसे अच्छा नहीं समझता। श्वसुरके नामसे प्रसिद्ध होना, ख्याति लाभ करना नराधमोंका काम है। मैं अब यहां न रहूंगा, मैं तो अपने पिताके घर जाऊँगा।

इसी प्रकार विचार करते२ सवेरा होगया, उसी समय रत्नसारको बुलाया, और कहा—मित्र! अब तो मैं यहां न रहूंगा, समर्थ पुरुषोंका स्वसुरके घर रहना लज्जा-बड़े शर्मकी बात है। यहां रहनेसे मेरे पिताका नाम तो मिटसा ही गया। मेरी प्रतिष्ठामें भी बट्टा लग गया। नीतिकारने बिलकुल ठीक कहा है कि "उत्तम पुरुष तो अपने गुणोंसे ही संसारमें मान्य होते हैं, लेकिन पिताके नामसे प्रसिद्धि पानेवाले मध्यम श्रेणिमें गिने जाते हैं। मामाके नामसे प्रसिद्ध पुरुषोंकी

गणना अधम श्रेणिमें और श्वसुरके नाम पर विख्यात पुरुषोंकी अधमसे भी अधम पुरुषोंमें होती है। इसलिये रत्नसार! अब यहांसे चलना होगा। रत्नसारने कहा-बहुत ठीक। मेरा भी यही मत है। निश्चय किया कि महाराजसे आज्ञा लेकर वसन्तपुर चलें। तदनुसार रत्नसार महाराज पद्मरथके पास गया, और बड़ी नम्रतासे कहा-महाराज! हम लोगोंको यहां रहते बहुत दिन होगये, माता पिता और परिवारके लोगोंको देखनेकी उत्कट अभिलाषा है, आपके अनुग्रहसे हम लोगोंने इतने दिन यहां रहकर बड़ा आनन्द पाया, कृपा कर अब हमें जानेकी आज्ञा दीजिये। यह सुनकर महाराजको दुःख तो हुआ पर रत्नसारका कहना समयोचित था, दूसरा कोई उपाय नहीं था। महाराजने रत्नसारके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया।

चित्रश्रेणि राजकुमारके जानेका दिन निश्चित होगया। महाराजने इनकी विदाकी बडी तैयारी की। हाथी, घोड़े, सोने और रत्नोंके अलंकार, बेशकीमती वस्त्र, और अपार धन दिया। विदा करते समय सब परिवारके लोगोंके सामने महाराजने पुत्रीको समयोचित शिक्षा दी-बेटी! तुम आज अपनी ससुराल जाती हो, संसारका यह नियम ही ऐसा है, सब कन्याओंको ससुराल जाना ही पडता है। वहां तुम्हारा सबसे पहला काम अपनी सास ससुरकी भक्ति और श्रद्धाके साथ सेवा शुश्रूषा करना होगा, गृहस्थीके सब कामकाजोंकी सम्भाल, अनुचर वर्गके साथ सदय व्यवहार, अपने धर्ममें

दृढ रहना, बडोंकी आज्ञा पालन, आदि कामोंको सावाधनीके साथ करना होगा। हरसमय पतिको प्रसन्न रखना, दुःख सुखमें साथी रहना, उनकी हर तरहकी आज्ञा पालन करना ही पति-व्रता गृहिणीका कर्तव्य है। इसीसे दोनों कुलोंका यश बढेगा।

इत्यादि शिक्षा देकर बडे आदर और सन्मानके साथ राजकुमारकी विदा की। राजकुमारने अपने बडे भारी दल बल सहित प्रयाण किया और चलते २ एक सघन वनमें डेरा दिया। एक बरगदके पेडके नीचे राजकुमारके ठहरनेकी व्यवस्था की गई। सब लोग मार्गके थके थे, भोज-नादि क्रिया कर सोगये, उसी बरगदके पेडमें गोमुख नामका एक यक्ष रहता था। उसकी यक्षीका नाम चक्रेश्वरी था। प्रसंगवश चक्रेश्वरीने यक्षसे पूछा—प्राणनाथ ! यह राज-कुमार जो इसी पेड़के नीचे सो रहा है बड़ा धीर, वीर, और पुण्यात्मा मालूम पड़ता है। भला यह तो बताओ, इसके पिता महाराज वीरसेन इसको राज्य देंगे या नहीं ? यक्षने विचार कर उत्तर दिया कि जब यह राजकुमार अपने माता पिताको छोडकर चला गया था, तब इसके वियोगसे इसकी माताको बड़ा दुःख हुआ। इसीके शोकमें माताकी मृत्यु भी हो गई थी। माताकी मृत्युके बाद महाराज वीरसेनने अपना दूसरा विवाह कर लिया। इस स्त्रीका नाम विमला है। इसका एक पुत्र भी है, और इसका नाम गुणसेन है। विमलाने अपने सुन्दर रूपसे, हाव-भावोंसे और छलकपटसे महाराजको

सब तरहसे वशमें कर लिया है। इस लिये जो कुछ भी विमला कहती है महाराजको जबरन करना पड़ता है। वे सचमुच विमलाके हाथके खिलौने बन गये हैं। विमलाको चित्रश्रेणिके चले जानेकी बात मालूम थी। इसलिये उसे सन्देह भी था कि यदि वह कभी आजायगा तो महाराज अपना राज्य उसीको देंगे। उसीको अपना उत्तराधिकारी बनावेंगे। इसीलिये विमलाने महाराजसे पहले ही प्रतिज्ञा करा ली थी, कि आपके बाद राज्यका उत्तराधिकारी गुणसेन होगा।

विमलाको इतनेहीसे संतोष न हुआ। उसे यह भी संदेह था कि प्रजा चित्रश्रेणिका पक्षपात करेंगी क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र तो वही है, इसलिये यहां आनेपर महाराजको चित्रश्रेणिके मारनेपर राजी किया। उसके मारनेके चार उपाय रचे गये हैं। घोडेपरसे गिराकर, नगरका दरवाजा गिराकर, या विषके लड्डू खिलाकर। यदि इन तीनों उपायोंसे न मरे तो सर्पसे डंसवाकर चित्रश्रेणिके प्राणोंका घात करना। यदि चित्रश्रेणि अपने पुण्यके उदयसे इन उपायोंसे बच गया तो वह अवश्य ही सार्वभौमिक राजाका मुकुट अपने मस्तकपर रक्खेगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं है, लेकिन देखो प्रिये! यह बात किसीसे कहना नहीं। जब राजकुमार उस पेड़के नीचे सोरहा था तब रत्नसार हाथमें नंगी तलवार लेकर उसकी रक्षा करता था, और इसी मौकेपर उसने उस यक्षकी

वे सब बातें सुनीं, और अपने परम प्रिय मित्रकी रक्षा करनेमें सब तरहसे सावधान होगया। इतनेहीमें सबेरा होगया, राज-कुमार सोकर उठ बैठा, स्नान भोजन आदि क्रिया कर फिर चलनेकी तयारी होगई और कुछ ही दिनोंमें राजकुमार अपने दल बल सहित वसन्तपुरके निकट जा पहुंचा।

महाराज वीरसेनको पुत्रके आगमनकी खबर मिली, और बड़ी भारी सेना लेकर पुत्रकी अगवानीके लिये चला। साथमें वह चपल घोड़ा भी लाया जिसपर बैठाकर चित्रश्रे-णिके प्राण लेनेकी बात थी। वसन्तपुरके उपवनमें दोनों तरफकी सेनाओंका मिलाप हुआ। चित्रश्रेणिने पिताको देखकर जल्दीसे घोडेसे उतरकर पापी पिताके चरणोंमें बडी विनयसे अपना मस्तक रख दिया। पिताने भी कृत्रिम-बनावटी प्रेमसे पुत्रको गोदीमें लेकर आलिंगन किया। कुछ कुशल पूंछी और उसके निकालनेका बडा पश्चाताप किया। पर पिताके इस शिष्टाचारमें माया और कपट था, फरेब और दगाबाजी थी, और पुत्रकी जिघांसाकी प्रबल पापमय वासना और जघन्य कुकर्मकी पराकाष्ठा थी। भोले चित्रश्रेणिको अपने पिता पर श्रद्धा और अनुराग था। उसे इन बातोंकी कुछ भी खबर न थी। शिष्टाचारके बाद पिताने पुत्रके चढ़ा-नेके लिये उस घोडेको दिया। रत्नसार पहलेसे तैयार था। उसने इस दुष्ट घोडेको इस सफाईसे बदला कि राजाको पता भी नहीं पडा। ठीक वैसा ही दूसरा घोड़ा लाकर कुमारके

सामने खड़ा कर दिया। कुमार उसपर सवार होकर गाजे-बाजेके साथ आगे बढ़ा। वीरसेनका पहला प्रयत्न निष्फल हुआ। कुमार अब उस नगरके द्वार पर आया जिसे गिराकर इसके मारनेका उपाय रचा गया था। ठीक उस दरवाजेके पास आनेपर रत्नसारने घोड़ेको एक एक चाबुक लगाया कि घोड़ा इस सफाईसे निकल गया जिससे वह द्वार कुमार-पर न गिर सका। इस बार भी कुमारकी रक्षा हुई, और वीरसेनका दूसरा उपाय भी निष्फल हुआ। कुमार नगरकी शोभा देखता हुआ पद्मावतीके साथ राजमहलमें गया, उप-माता विमलाकी विनयसे चरण वन्दना की, पद्मावतीने भी वैसा ही किया।

विमलाने दोनोंके कुशल समाचार पूछे, और कुमारने माताके प्रश्नोंका यथोचित उत्तर दिया। यह सब शिष्टाचार होजानेके बाद राजकुमार पद्मावतीके साथ उसी राजमहलमें रहने लगा। विमलाको इसके मारनेकी बडी चिन्ता थी। उसने विषके लड्डूको तैयार कर लिये। एक दिन कुमारको निमन्त्रण कहला भेजा, रत्नसारको भी इस बातका पता लगा। उसने दूसरे लड्डू ठीक उसी तरहके बनाये। कुमार रत्नसारके साथ विमलाके यहां भोजन करने गया, भोजन-शालामें पहुंचा, महाराज वीरसेन भी वहां पहुंचे, सब लोग भोजनके लिये बैठे, कुमार और रत्नसार बिलकुल पास बैठे, महारानी विमला खुद परोसनेको निकलीं। महाराजके थालमें विना विषके, और कुमारके थालमें विषमय लड्डू परोसे गये।

रत्नसार अपने बनाये लड्डुओंको साथ लेता गया था। ज्योंही विषके लड्डू थालीमें आये और महारानी दूसरी चीजको लेने भीतर गईं इतनेहीमें रत्नसार अपने हाथकी सफाई खेल गया—विषमय लड्डुओंको उठाकर उनके स्थानमें अच्छे लड्डू रख दिये। यद्यपि यह चाल और किसीने न देखी पर स्वयं कुमार, रत्नसारके इस हस्तकौशलको ताड गया, पर उस समय बुद्धिमानीसे चुप रह गया। सब लोगोंने बड़े आनन्दके साथ भोजन किया। भोजनके बाद सबको पान सुपारी दीगई। महारानीने कुमार, पद्मावती और रत्नसारका यथोचित सन्मान किया और उनके आनेकी खुशी भी मनाई। इस शिष्टाचारके बाद सब लोग अपने २ स्थानको चले गये। ग्रन्थकार कहते हैं कि पुण्यके उदयसे जीवोंको दुःख-दायी सामग्री भी सुखकी कारण होजाती है, सचमुच पुण्यात्मा पुरुषोंके लिये हलाहल विष भी अमृत तथा भयङ्कर नाग भी पुष्पमाला होजाता है।

इधर जब विमलाने देखा कि चित्रश्रेणिने विषके लड्डू खा लिये पर वह मरा नहीं, विमलाको रत्नसारकी करामात तो मालूम थी नहीं, उसे राजापर सन्देह हुआ। उसने समझा, राजा अपने पुत्रसे मिल गया हो न हो, इसने सब भंडाफोर कर दिया है, इसीसे चित्रश्रेणि किसी तरह बच गया है। खैर, मैं उन दोनोंको देख लूङ्गी। विमला इसी उधेडबुनमें लगी थी, इतनेहीमें दैवयोगसे राजा भी आपहुंचे,

फिर क्या था, विमलाकी बन आई। महाराजको आडे हाथों लिया, बुरा भला कहा खूब डाट डपटाई बताई। विमलाने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया, कि तुम कुमारसे मिल गये हो, और मेरे मार्गमें कण्टक बिछा दिये, उसमें बाधा दी।

वास्तवमें राजाने चित्रश्रेणिसे कुछ नहीं कहा था। रानीकी इस लताडताका महाराज पर उल्टा असर पडा। अपने पुत्रके साथ किये व्यवहारोंका बडा पश्चात्ताप किया। एक दिन रातमें पडे २ महाराजने विचारा, मैंने विमलाके कहनेमें आकर पुत्रके मारनेके उपाय रचकर बडा अनर्थ किया, इस मेरे पौरुषको धिक्कार! शतवार धिक्कार!!

सचमुच वे बडे ही मूर्ख हैं, उनका तीव्र मोहकर्मका उदय है, जो दूसरेके मोहमें फंसकर अनर्थ करनेपर उतारू होजाते हैं। खेद, मुझे स्वयं अपनी बुद्धि और करतूतों पर तरस आता है। वास्तवमें मोहका जीतना कायरोंकी सामर्थ्यके बाहर हैं। हां, सच्चे धीर ही इसपर विजय प्राप्त करते हैं अब मुझे राज्यसे कुछ प्रयोजन नहीं यह घर भी मुझे कारागार जेलखाना जैसा मालूम होता है। स्त्री, पुत्र, मित्र, परिवार यह सब अपने मतलबके साथी हैं, यह संसारके बन्धन हैं, यह विमला तो बडी ही पापिनी है। मैं अब इसका सम्पर्क ही न करूङ्गा। सचमुच स्त्रियोंके चारित्रोंको कोई नहीं जान पाता, मनमें कुछ और है, बोलतीं कुछ और ही हैं, पर काम तो इन दोनोंसे निराले ही हैं, व्यर्थ ही लोगोंको

इन्होंने मायाजालमें फँसा रक्खा है, इत्यादि विचारोंसे राजाके हृदयमें बडा वैराग्य उत्पन्न हुआ, संसार और सांसारिक सुखों—सुखाभासोंको तुच्छ समझा।

राजा इसी प्रकारके विचारोंमें लीन था, इसी समय वसन्तपुरके उपवनमें महावीर भगवानका शुभागमन हुआ। उनके आने मात्रसे छहों ऋतुओंके फल फूल एक साथ उत्पन्न होगये, सूखे तालाब निर्मल जलसे भर गये, उनमें कमल खिल गये, और भी अनेक अतिशय हुये, यह सब देखकर वनपालने महावीर भगवानके आगमनकी सूचना महाराज वीरसेनको दी। महाराजने वनपालको बहुतसा धन दिया. और नगरमें भगवानकी वन्दना करनेके लिये घोषणा कराई।

पुरजन और परिवारके लोगोंके साथ महाराजने उपवनको प्रयाण किया और वहां जाकर समवसरणमें विराजमान महावीर भगवानको देखकर बडा हर्षित हुआ, तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दना की और मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक अष्टद्रव्यसे पुजा की, और पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया। सर्व भाषामयी, समस्त जीवोंकी हित करनेवाली, भगवानकी दिव्यध्वनि होने लगी, उसमें यह धर्मोपदेश था कि, यह जीव कर्मोंके उदयसे चारों गतिओंमें परिभ्रमण करता है, इन कर्मोंसे उद्धार पानेका इनसे छूटनेका उपाय धर्मका धारण करना है। समस्त प्राणियोंपर

दया करना ही संक्षेपसे धर्मका लक्षण है, वह धर्म दो प्रकारका है—एक मुनि धर्म, दूसरा श्रावक धर्म। पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन प्रकार गुप्ति, इस तेरह प्रकारके उत्कृष्ट चारित्रको धारण करना मुनियोंका धर्म है, तथा पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, और तीन गुणव्रत इन बारह व्रतोंको धारण करना श्रावकोंका धर्म है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांचोंका सर्वथा त्याग करना पंच महाव्रत हैं। ईर्या भाषा, एषणा, आदान निक्षेप और प्रतिष्ठापन (उत्सर्ग) यह पंच समिति हैं, तथा मन वचन कायका शुद्ध होना तीन गुप्तियां हैं। इसप्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति, पांचों इन्द्रियोंका वशमें करना तथा समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, स्नान त्याग, स्वच्छ भूमिपर शयन, बालोंका उखाड़ना, एक बार थोड़ा भोजन, दन्तधावनका त्याग, खड़े २ आहार लेना, यह २८ मुनियोंके मूलगुण हैं तथा ८४ लाख उत्तरगुण हैं इन समस्त गुणोंका धारण करना ही मुनियोंका धर्म है, और इन्हीं गुणोंके धारण करनेसे समस्त कर्मोंका नाश और मुक्ति होती है।

उपरोक्त बारह व्रतोंका धारण करना श्रावकोंका धर्म है। इन उपरोक्त पंच पापोंका एकदेश त्याग करना पंच अणुव्रत हैं। सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग और अतिथि संविभाग यह चार शिक्षाव्रत हैं तथा दिग्व्रत, देशव्रत, और अनर्थदंडव्रत यह तीन प्रकारका गुणव्रत है। इनके अतिरिक्त ५१

क्रिया, ११ प्रतिमा, चार दान आदि बातोंका होना भी श्रावकके लिये आवश्यक है, लेकिन विना सम्यग्दर्शनके यह सब व्रत नियमादिक निष्फल हैं, इसलिये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये। तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं। पुण्य और पाप मिलकर इन्हींको ९ पदार्थ भी कहते हैं।

जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, यह छह द्रव्य हैं, इनमेंसे काल द्रव्यको छोड़कर बाकीके पांच द्रव्योंको पंचास्तिकाय कहते हैं। इस तरह सात तत्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य, और पांच अस्तिकाय, इन २७ तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इसके आठ अंग है-निःशंकित, निःकांक्षत, निर्विचिकित्सित, अमूढदृष्टि, स्थितिकरण, उपगूहन, प्रभावना और वात्सल्य। सम्यग्दर्शनके २५ दोष हैं-तीन मूढता, आठ मद, षट् अनायतन, तथा शंका, आकांक्षा, आदि। इस सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं-औपशमिक, क्षयोपशमिक और क्षायिक। इस प्रकार महावीर भगवानके मुखारविंदसे धर्मोपदेश सुनकर महाराज वीरसेनको बड़ा आनन्द हुआ। साथ ही साथ उत्कट वैराग्य भी हुआ। संसारके विषयभोगोंसे इच्छा हट गई। संसारको असार जाना और जिन दीक्षा लेनेका दृढ़ संकल्प किया। नगरमें लौटकर सब मंत्रियोंको बुलाया और अपना विचार उनको सुनाया।

मंत्रियोंने भी जब देखा कि महाराजका दीक्षा लेनेका विचार पक्का है, तब यह निश्चय किया गया कि चित्रश्रेणिको राजगद्दी दीजाय और हुआ भी ऐसा ही। चित्रश्रेणिका राज्याभिषेक बड़ी धूमधामसे होगया। राज्याभिषेकके समय राजा महाराजोंको महाराज वीरसेनने समयोचित उपदेश दिया कि अब मेरा बुढ़ापा है, अन्त समय है, मैं दीक्षित होता हूं। आजसे ही युवराज चित्रश्रेणिको इस साम्राज्यका अधिपति बनाया है। मुझे आशा और विश्वास है कि आप सब अब अपनी मर्यादाका उल्लंघन न करेंगे। जैसा मेरे प्रति आप सबका अनुराग, सौहार्द और सहानुभूति थी, ऐसा ही व्यवहार चित्रश्रेणिके साथ भी करेंगे। संक्षेपमें इतना कहकर महाराज रनवासमें महारानी विमलाके पास गये। और सब समाचार सुनाया। महारानी विमला तो पहले हीसे संसारसे उदास होचुकी थी। क्योंकि चित्रश्रेणिके राज्यगद्दीपर बैठ जानेसे और अपने पुत्र गुणसेनको राज्य न मिलनेसे उसके चित्तमें बड़ा वैराग्य छागया था। उसने कहा-प्राणनाथ! यदि आप दीक्षा लेते हैं तो मैं भी दीक्षा लूंगी। राज्यादिकका सुख विना आपसे मुझे क्या अच्छा लगेगा? महाराजने कहा-तुम्हें अभी दीक्षा लेना उचित नहीं है। गुणसेन अभी बालक है, उसका लालनपालन करो। महारानी बोली-प्राणनाथ! भला-आपके विना, पुत्र, या इन राज्यकी बिभूतियोंसे मुझे क्षणमात्र भी सुख होसकता है? पतिके

विना स्त्रियोंको संसारमें सुख देनेवाली कोई भी सामग्री नहीं।

बहुत कुछ समझाने पर भी विमलाने एक न मानी। अन्तमें राजाने भी उसकी बात मान ली, और महावीर भगवानके समवसरणमें जाकर महाराज वीरसेन और महारानी विमलाने जिनदीक्षा लेली, और दुर्धर तप किया। जहां तहां विहार कर भव्य प्राणियोंको धर्मोपदेश दिया।

इधर चित्रश्रेणि अपनी प्रजाका भली भांति पालन करने लगा। रत्नसारको सब मंत्रियोंका प्रधान मन्त्री बनाया। एक समय रत्नसारने मनमें विचारा कि चित्रश्रेणिके पुण्योदयसे इसकी मृत्युके तीन कारण तो निष्फल होगये, पर अब भी एक कारण बाकी है, और उसकी मुझे बड़ी चिन्ता है। अस्तु, पुण्यके प्रभावसे सब अच्छा ही होगा। इस प्रकार विचार कर रत्नसारने महाराज चित्रश्रेणिको उपदेश दिया कि आप पुण्यकर्म करनेमें सदा लीन रहना, इसलोक और परलोकमें पुण्य ही सब सुखोंका देनेवाला है, इस पुण्यसे समस्त विघ्न-बाधाओंका नाश और सम्पत्तिओंकी प्राप्ति होती है। महाराजने इस धर्मोपदेशको सुना ही नहीं, इसके अनुसार आचरण भी किया। यह सच है कि धर्मात्मा पुरुषोंको धर्मोपदेश बड़ा ही प्रिय होता है, पर दुष्टोंको यह नहीं रुचता। महाराज चित्रश्रेणि और महारानी पद्मावतीने दीन, अनाथोंको सहायता दी, नवीन जिन मंदिर बनवाये। तथा प्राचीन जीर्ण मंदिरोंका उद्धार करवाया, और उन्हें

नाना उपकरणोंसे अलंकृत किया। इन दोनों दम्पतीको जिनपूजा, शास्त्रका अभ्यास, पात्रोंमें दान देना गुणी पुरुषोंमें अनुराग करना, इत्यादि सद्गुणोंसे बड़ा प्रेम था। रत्नसारमें भी यह सब गुण थे। तीनोंके स्वभाव एकसे थे, इस कारण परस्परमें प्रेम भी खूब ही था। रत्नसार सच्चा स्वामिभक्त मन्त्री था। इसलिये राज्यकी देखभाल तो अच्छी तरहसे करता ही था, पर चित्रश्रेणिकी रक्षाकी वह विशेष सावधानी रखता था। रातको महाराजके शयनागारमें नंगी तलवार लेकर टहला करता था। एक दिनकी बात है कि महाराज और महारानी रातको शयनागारमें आनन्दसे बेसुध सो रहे थे। जिस हिंडोलेमें दोनों सो रहे थे उसीकी सांकल-पर नीचे महाराजके पास उतरते हुये काले सांपको रत्नसारने देखा। रत्नसारको उस यक्षकी बात याद आई। उसने तत्काल ही तलवारसे सांपको काट डाला, लोहूकी कुछ बूँदें महारानीकी जांघपर पड़ गई थीं। इसलिये रत्नसार कपड़ेसे उन बूंदोंको पोंछने लगा। इतनेहीमें महाराज भी जाग पड़े और रत्नसारको महारानीकी जांघ परसे लोहू पोंछते देखा। महाराजने जल्दीसे पूछा—रत्नसार! यह क्या बात है? अब तो रत्नसार बड़ी दुविधामें पड़ा। यदि मैं इस घटनाको सुनाता हूं तो प्रसंगवश वे तीनों बातें, (घोडे, नगरद्वार और विषके लड्डुओंकी) भी सुनानी होंगी तथा ऐसा करनेसे म पत्थरका होजाऊँगा।

यदि मैं झूठ बोलूँ या कोई बात बनाऊँ तो नहीं मालूम महाराजके मनमें क्या खयाल होगा ? राजाओंका विश्वास करना नीतिके विरुद्ध है। नीतिमें लिखा है कि समय पर राजा लोग उपकार, सेवा और पौरुष आदिकी कुछ परवाह नहीं करते। बहुत कुछ सोच विचार कर रत्नसारने निश्चय किया कि जो हो, मैं अपने स्वामीके सामने सब बातें स्पष्ट कहूंगा, अनुकूल और सत्य कहनेमें कोई बुराई भी नहीं है; नीतिका भी यही उपदेश है। अन्तमें रत्नसारने कहा-महाराज ! यदि मैं इस सम्बन्धकी सब बातें आपको सुना दूं तो मैं पत्थरका होजाऊँगा। महाराज बोले-जो कुछ भी हो मैं इसके सम्बन्धकी सब बातोंको सुनूंगा। भला, बात कहनेमें कोई पत्थरका थोड़े ही होजाता है ? यह सुनकर समझदार रत्नसारने साहस कर कहा-अच्छा तो सुनिये-महाराज !

जब आप रत्नपुरसे पद्मावती महारानीके साथ बसन्तपुरको लौट रहे थे, तब रास्तेमें एक वटवृक्षके नीचे आप ठहरे थे। उसी वृक्षपर यक्ष और यक्षिणी रहते थे, तुम्हें देखकर यक्षिणीने यक्षसे पूछा-प्राणनाथ ! इस राजकुमारको जो इसके नीचे सोरहा है, इसका पिता राज्य देगा या नहीं ? तब यक्ष बोला-सुनो ! इस राजकुमारका पिता वीरसेन नई महारानी विमला के वशमें है, और वह विमला अपने पुत्र गुणसेनको राज्य दिलाना चाहती है। इस बातकी विमलाने महाराजसे प्रतिज्ञा भी करा ली है। इसलिये इसको मारनेके

लिये विमला तथा इसके पिताने तीन उपाय रचे हैं। अपने पुण्यके उदयसे किसी तरह यदि बच गया तो यह राजकुमार अवश्य ही सार्वभौमिक राजा होगा। हां, इसकी मृत्युका एक कारण और भी है वह यह कि सोते समय इसको एक काला सांप काटने आवेगा। यदि इससे भी बच गया तो अपने जीवनको धर्मपूर्वक आनन्दसे बितावेगा। लेकिन प्रिये! देखो, यह मंत्रीपुत्र रत्नसार इन बातोंको सुन रहा है। यदि यह किसीसे इन बातोंको कहेगा तो यह पत्थरका होजायगा। बेशक मैंने यह सब बातें सुनी थीं, पर मैं उसी दिनसे आपकी इन आपदाओंको समय समयपर टालता रहा।

आपके पिता जब आपको लेने आये थे तब वे एक दुष्ट घोड़ी आपके चढ़नेको लाये थे। मैंने उसे उसी समय बदल दिया। किसीको मालूम ही नहीं पड़ने पाया था। इस एक बातके कहते २ रत्नसार घुटनोंतक पत्थरका होगया। महाराज चित्रश्रेणिने कहा-हां, फिर इससे आगे क्या हुआ?

रत्नसार बोला-जब घोड़ेसे बच गये तब आप उस नगरद्वारके पास आये, जिसे गिराकर आपके प्राणोंके लेनेका विचार था। वहां पर भी मैंने आपकी रक्षा की। घोड़ेको एक तेज चाबुक मारकर उस दर्वाजेसे ऐसी फुर्तिसे निकाल दिया कि आप बाल२ बच गये। इस बातको कहते२ रत्नसार कमर तक पत्थरका होगया। महाराज चित्रश्रेणिने फिर भी कहा,—'हां रत्नसार! फिर आगे क्या हुआ?

रत्नसार बोला—महाराज ! इसके बाद विषके लड्डुओंकी बात है और यह बात तो आपको भी मालूम है। जब आपकी उपमाता बिमला महारानीने आपके थालमें विषके लड्डू परसे थे और मैंने सफाईसे बदल दिये थे। महाराज बोले—हां, यह बात मुझे याद है। इस बातको समाप्त करते२ रत्नसार गले तक पत्थरका हो चुका था। महाराजने फिर भी उसे आगे कहनेको कहा और रत्नसार इस प्रकार कहने लगा:—

महाराज ! जब आज रातको आप और महारानी पद्मावती झूलेके पलंग पर सो रहे थे, उसी समय झूलेकी सांकल परसे एक काला भुजङ्ग आपके पास उतरा चला आरहा था। मुझे उस यक्षकी बात याद आई। मैंने सोचा-यह नीचे उतर कर अवश्य ही आपको डस लेगा। इसलिये मैंने वहीं उसे तलवारसे काट डाला। महारानीकी जांघपर कुछ लोहूकी बूंदें गिर गई थीं और मैं उन्हें एक कपड़ेसे पोंछ रहा था, इसी बीचमें आप भी जाग पड़े थे। बस यही मेरा सब वृत्तान्त है। इतना कहनेके बाद रत्नसार सर्वांग पाषाणमय होगया और जमीन पर गिर गया। यक्षने जो बात कही थी, वह सत्य हुई। महाराज चित्रश्रेणिसे प्रिय मित्र रत्नसारकी यह आफत देखी न गई ! उसकी निश्चल स्वामीभक्ति और अलौकिक गुणोंको याद कर महाराजको बड़ी मर्म वेदना हुई। महाराज भी बेहोश हो जमीनपर गिर

गये । महारानीने जल्दीसे शीतोपचार किया । थोड़ी देरमें महाराज सचेत होगये, और उन्होंने बड़ा विलाप किया ।

हा ! प्रियमित्र ! ! तुम्हारे समान परम बन्धु संसारमें कोई नहीं है, मुझ जैसा अधम और कृतघ्न भी संसारमें दूसरा न होगा । चार वार तुमने मेरे प्राणोंकी रक्षा की, विदेशमें मेरा साथ दिया । अनेक कष्ट उठाये, मेरे लिये तुमने सब कुछ किया पर मैंने तुम्हें उन उपकरणोंका यह बदला दिया !!! सचमुच ! समयपर बुद्धिमें भी फर्क पड जाता है । मैंने अपनी मूर्खतासे तुम्हें पत्थरका बना दिया । तुम्हारे विना यह राज्य मुझे शून्य मालूम पड़ता है । आज मेरे सब सुखोंका एकदम अभाव होगया । तुम्हारे विना मेरा जीना भी व्यर्थ है । मैं भी तुम्हारा साथ दूंगा । यदि तुम इस पाषाणत्वका परित्याग कर मुझसे फिर न मिले तो मैं भी प्राण छोड़ता हूं । क्योंकि तुम्हारे वियोगका दुःख मैं सह नहीं सकता ।

इत्यादि विचार कर चित्रश्रेणिने आत्मघात करनेका पक्का निश्चय कर लिया और आत्मघात करनेका कोई उपाय ढूँढ़ने लगा । महारानी पद्मावती बड़ी दूरदर्शिनी समझदार थी । महाराजके अभिप्रायको वह ताड़ गई । अवसर देखकर उसने महाराजको समझाया । प्राणनाथ ! मैं जानती हूं कि रत्नसारके वियोगसे आपके हृदयमें बड़ी भारी चोट लगी है, पर आपने जो आत्मघात करना विचारा है, यह ठीक नहीं । इससे

अपवाद—अपकीर्ति फैलेगी, आपकी कीर्तिमें बट्टा लगेगा। आप घबड़ाहट छोड़िये, शांतचित्त हो विचार कीजिये। आत्मघात करना पुरुषोचित कार्य नहीं है, फिर आप जैसे धीरवीर नरनाथको तो ऐसा करना सर्वथा अनुचित ही है। आत्मघात करनेसे मित्र-मिलन न होगा। मैं जो उपाय बताती हूं वह कीजिये, रत्नसारका प्राणान्त नहीं हुआ। उस यक्षके श्रापसे ही उसकी ऐसी दशा हुई है।

आप एक काम कीजिये। दानशालामें दान देनेकी व्यवस्था कीजिये और जितने याचक आवें उनको मनमाना दान दीजिये। इस दानको सुन दूर—देशान्तरोंसे नानाप्रकारके आदमी आवेंगे, सम्भव है उनमें कोई ऐसा तंत्र मंत्र जादू टोंना जाननेवाला साधु—सन्यासी आजाय जो इस रत्नसारकी दशा सुधार दे। महाराजने पद्मावतीका कहना मान लिया और वह याचकोंको मनमाना दान देने लगा। दूर२ से हरतरहके याचक आये, पर रत्नसारकी दशा किसीसे सुधरी नहीं। और भी अनेक उपाय किये गये। पर किसीमें भी सफलता नहीं हुई, तब तो दोनों बड़े हताश हुये।

महाराजकी चिंता दिनोंदिन बढ़ने लगी। नृत्य गीतादिसे मनोविनोद करना तो दूर रहा, राज्यका सब कामकाज करना एकदम छोड़ दिया। निरन्तर रत्नसारके विषयमें चिन्तित रहने लगा। एक समय महाराज चित्रश्रेणिने विचारा, हो न हो जिस यक्षने मेरी उन चार आपत्तियोंके

विषयमें भविष्यवाणी कही थी, बहुत संभव है वही यक्ष रत्नसारकी इस आपत्तिके निस्तारका उपाय बतलावे। इसी सोच विचारमें रात बीत गई। सबेरा होते ही राज्यका काम एक मंत्रीके सुपुर्द कर दिया और शुभ मुहूर्तमें उस वटवृक्षकी ओर चला जिसमें वह यक्ष रहता था। अपने जानेका वृत्तान्त पद्मावतीसे भी कहता गया था। कुछ ही दिनोंमें वटवृक्षके पास पहुंच गया। रास्तेका थका तो था ही, आते ही उसके नीचे सोगया।

उस यक्षिणीने फिर यक्षसे पूछा—प्राणनाथ! यह कौन पुरुष है जो इस वृक्षकी छायामें सो रहा है? वह बोला—प्रिये! तुम इसे नहीं जानतीं, यह वही राजकुमार है जो उस दिन अपनी प्रिय पत्नी और रत्नसारके साथ यहां ठहरा था। यक्षिणीने कहा—स्वामी! यह दुःखी क्यों है? यक्ष बोला—प्रिये! यह अपने प्रिय मित्र रत्नसारके वियोगसे अत्यन्त दुःखी है। यह सुनकर यक्षिणीने मित्रवियोगका कारण पूछा और यक्ष इस प्रकार कहने लगा:—

प्रिये! तुम्हें याद होगा, इसीके विषयमें तुमने पहले भी पूछा था कि इसका पिता इसको राज्य देगा या नहीं। तब मैंने कहा था कि इस चित्रश्रेणिकी मृत्युके चार कारण हैं, जिन्हें मैं पहिले कह चुका हूं। यदि उन चार कारणोंसे इसकी मृत्यु न हुई तो यह सार्वभौमिक राजा होगा। इन सब बातोंको इसका मित्र रत्नसार सुन रहा था। तब मैंने

यह भी कहा था कि यह रत्नसार इन सब बातोंको सुन रहा है। यदि यह इन बातोंको किसीसे कहेगा तो यह पत्थरका होजायगा। रत्नसारके उद्योगसे तथा चित्रश्रेणिके पुण्यके उदयसे चित्रश्रेणिकी मृत्युके वे चारों कारण तो टल गये, पर विवश होकर रत्नसारको इन सब बातोंका जिकर महाराज चित्रश्रेणिके सामने धरना पड़ा और उसी समयसे रत्नसार पत्थरका होगया, तभीसे यह चित्रश्रेणि मित्रवियोगसे विकल है। संसारमें स्नेह ही सब आपदाओंका कारण है। मित्रके स्नेहसे ही यह चित्रश्रेणि इधर उधर भटकता है, मारा मारा फिरता है।

यह सब कथा सुनकर यक्षिणीको बड़ी दया आई, वह बोली-प्राणनाथ! कृपा कर शीघ्र बतलाइये! रत्नसारकी इस आपत्तिका कोई प्रतिकार भी है? वह किसी प्रकार इस रोगसे उन्मुक्त होसकता है? यक्षने थोडी देरतक मनमें विचार कर कहा-प्रिये! हां, इसका एक उपाय है, यदि कोई पतिव्रता नारी अपने बच्चेको गोदमें लेकर रत्नसारके पत्थरके तमाम शरीरका स्पर्श करे तो अवश्य ही रत्नसार फिर ज्योंका त्यों होजायगा-वह पत्थरका न रहेगा। चित्रश्रेणिने पेड़के नीचे पड़े २ यक्षयक्षिणीका यह संवाद बड़े ध्यानसे सुना-उसे बड़ा आनन्द हुआ। अपने मित्रके दर्शनका उपाय उसे मिल गया। रातभर उसी पेड़के नीचे सुखकी नींद सोया। सवेरा होते ही अपने नगरकी ओर

चला और कुछ ही दिनोंमें वह वसन्तपुर आपहुंचा। अपने स्वामीके आजानेसे राज्यभरमें आनन्द छागया। पद्मावती महारानीको भी पतिदर्शनसे अपार आनन्द हुआ। महारानी गर्भवती थीं, प्रसवके दिन भी बहुत ही थोड़े बाकी थे, इससे महाराज चित्रश्रेणिको भी बडी प्रसन्नता हुई। महाराजने धीरे २ राज्यका कामकाज करना प्रारम्भ कर दिया, नित्यप्रति खूब दान देते, सदा धर्ममें लीन रहते और अच्छे२ कार्योंमें अपना समय विताते थे। कुछ दिनों बाद शुभ मुहूर्तमें महारानीके गर्भसे एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। पुत्रजन्मकी खुशीमें बडे २ उत्सव महाराजने कराये। जिन मंदिरोंमें महापूजा करवाई। याचकोंको मनमाना दान दिया, नगरकी सौभाग्यवती स्त्रियोंको नानाप्रकारके वस्त्र और अलंकार दिये। नगरभरके सब नरनारियोंका निमंत्रण कर उन्हें बडे सन्मार्गसे भोजन कराया। भोजनके बाद सब लोग राजभवनमें उपस्थित हुये। पुत्रके नामकरणका विचार किया गया। सब लोगोंने निश्चय किया कि इस पुत्रकी उत्पत्ति धर्मके प्रभावसे हुई है। इसलिये इसका नाम धर्मसेन होना चाहिये। सबकी सम्मतिसे उसका नाम धर्मसेन ही रक्खा गया।

इस दिन भी महाराजने बडा उत्सव मनाया, दानशालामें जाकर बहुतसा दान दिया। इसी समय महाराजने पद्मावतीसे यक्षकी वह सब कथा सुनाई। और कहा—अब तुम पुत्रवती भी हो, आज तुम्हारे शीलकी परीक्षा होगी। यदि तुम सच्ची पतिव्रता होगी तो यह हमारा परमप्रिय मित्र

रत्नसार तुम्हारे स्पर्शसे अच्छा होजायगा। पद्मावतीने कहा-- प्राणेश्वर ! मैं अपने शीलकी परीक्षा देनेको हर तरह और हर समय तैयार हूं। यह सुन महाराजने इस घटनाको देखनेके लिये सब नगरमें घोषणा करादी। बातकी बातमें नगरके सब लोग आपहुँचे। सब लोगोंके आजानेपर एक ऊँचे स्थानपर खड़े होकर महाराजने सब उपस्थित लोगोंको रत्नसारकी वह पाषाण मूर्ति दिखलाई। यह रत्नसार किस तरह पाषाणमय होगया, इस बातको महाराजने आदिसे लेकर अन्त तक ज्योंकी त्यों कहदी, तब तो लोगोंके मनमें बड़ा ही कौतूहल हुआ। फिर महाराजने पद्मावतीसे कहा—अब समय आगया है, सब लोगोंके सामने अपने शीलकी परीक्षा दो।

महारानी तो पहले हीसे तैयार थी। इतनी बात सुनते ही महारानी पहिले जिन मंदिरमें गई, स्नानकर स्वच्छ वस्त्र धारण कर शुद्ध मन, वचन, कायसे जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की। बादमें सभामें आई, धर्मसेन पुत्रको गोदीमें लेकर महारानी रत्नसारकी उस पाषाण मूर्तिके पास खड़ी होगई। मनमें श्रद्धा और भक्तिसे जिनेन्द्र भगवानका स्मरण किया। और फिर उच्च स्वरसे कहा-शासन देवता ! इस क्षेत्रके रक्षक क्षेत्रपाल !! और समस्त वैमानिक देव !!! आप मेरे इस नम्रनिवेदनको सुने ! मैं यदि सच्ची पतिव्रता हूं, मन, वचन, कायसे यदि मैंने परपुरुष पर दृष्टि नहीं डाली हो, और यदि मेरा शील निर्दोष हो तो मेरे हाथके स्पर्शमात्रसे यह पाषाण मूर्ति रत्नसार होजाय !!!

इतना कहकर पद्मावती महारानीने उस पाषाणमूर्तिको हाथ लगाया. हाथ लगाते ही वह पाषाणमूर्ति रत्नसारके रूपमें बदल गई । यह देखकर उपस्थित लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । सबने मिलकर कहा-वास्तवमें हमारी महारानी पतिव्रता हैं, यह नारी नहीं साक्षात् देवी हैं। लोगोंने शीलकी बडी महिमा गाई । उन्होंने कहा-शीलके समान संसारमें और कोई उत्कृष्ट वस्तु नहीं । इसके प्रभावसे कठिनसे भी कठिन रोग दूर होजाते हैं, काला सांप माला हो जाता है । अधिक क्या कहा जाय, इस शीलके प्रभावसे ही स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है । सीताका निर्मल यश इसी शीलके प्रभावसे हुआ था। शीलके प्रभावसे ही अग्निकुण्ड जलमय होगया था । यह भी तो शीलहीका प्रभाव है जो एक पाषाणमूर्तिसे रत्नसार बन गया । मेघकुमार, जयकुमार, सुदर्शन सेठ, और नारद आदिके चरितोंमें भी शीलके ज्वलन्त उदाहरण पुराणोंमें पाये जाते हैं । वास्तवमें शील ही सबसे बढ़कर धर्म है, शील ही तप है, और शील ही व्रत है । इस शीलके पालन करनेसे ही दोनों लोक सुखमय होते हैं। वे पुरुष धन्य हैं, उनका मनुष्य जन्म पाना सफल है, वे देव और देवेन्द्रोंको मान्य हैं, जिन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण किया है। समस्त प्राणियोंको उचित है कि वे निर्दोष शीलव्रतको धारण करें। तीनों लोकोंमें शीलके समान और कोई पुण्य नहीं है ।

चतुर्थ परिच्छेद समाप्त ।

पंचम परिच्छेद।

महाराज चित्रश्रेणिको रत्नसार मिल गया, पत्थरका शरीर छोड़ते ही रत्नसारको महाराजने गले लगाया। अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप किया। रत्नसारके मिलनेसे और पुत्ररत्नकी प्राप्ति होनेसे महाराजके आनन्दका पार नहीं रहा। महाराज और रत्नसारने राज्यका काम संभाला, दीन दुखियोंकी रक्षाका प्रबन्ध किया। तथा धूर्त, बदमाश और अत्याचारी-प्रजा पीडकोंका दमन किया। धर्मकी प्रभावना की, गरीब और अनाथोंके पालन-पोषणकी व्यवस्था की, दानका अच्छा प्रबन्ध किया। इन सब बातोंसे महाराज चित्रश्रेणि और रत्नसार मंत्रीका दूर २ तक यश फैल गया। इसप्रकार महाराज और महारानी तथा रत्नसार तीनों राज-काज संभालते तथा धर्ममें लीन रहकर अपने दिन आनन्दसे विताते थे।

एक दिन महाराज मंत्रिवर्ग और अपने सामन्तोंके साथ दरबारमें सिंहासनपर बैठे थे। इतने हीमें एक दूतने प्रणाम कर निवेदन किया-महाराज! सिंहपुरके महाराज सिंहशेखरने प्रजामें बड़ा कोलाहल मचाया है। वे अपने करद राजा हैं, जबसे आप राजगद्दीपर बैठे हैं उन्होंने तभीसे कर नहीं दिया। तिसपर भी कभी २ अपने राज्यकी सीमामें आकर उपद्रव मचाते हैं, लूटपाट करते हैं, अपनी प्रजाके

लोगोंको तंग करते हैं। सच तो यह है कि उन्हें अपनी सेनाका बड़ा घमण्ड है। इसीपर इन्होंने इतनी उछलकूद मचा रक्खी है। इसलिये इसका कोई उपाय जल्दी होना चाहिये ! इनके मुँहसे इतनी बातके सुनते ही महाराजका मुँह लाल पड़ गया। क्रोधके मारे बदन थर्राने लगा।

थोड़ी देर मंत्रियोंसे सलाह कर रण-दुंदुभी बजवाई, बातकी बातमें सेना तैयार होगई। महाराजने सुभटोंको समयोचित साहसवर्द्धक उपदेश दिया। और असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और पयादोंकी चतुरंग सेना लेकर सिंहपुरकी तरफ प्रयाण कर दिया। आगे २ रणके बाजे बजते थे, जिनसे योद्धाओंका साहस दुगुना होता था। चारणगण महाराजकी विरुदावलीका वर्णन करते जाते थे। इसी तरह चलते २ कुछ दिनोंमें महाराजका कटकदल दण्डकवनमें पहुँचा, और महाराजने वहीं पड़ाव डाल दिया। आधी रातका समय था, सब लोग नींदमें खुर्राटे लेरहे थे। पर महाराज चित्रश्रेणि उस समय भी जाग रहे थे, उस भीषण वनमें एक तरफसे किसीके आर्त-शब्द सिसकनेकी आवाज आरही थी। महाराजने विचारा इस निर्जन वनमें यह आवाज किसकी है? मैं इसका पता लगाऊँगा। ऐसा विचार कर हाथमें तलवार लेकर उस तरफ चला, जिस तरफसे आवाज आरही थी। कुछ ही दूर चलकर एक पेड़से रस्सियोंसे बंधे एक आदमीको देखा, मारे पीड़ाके वह सिसक रहा था, महाराजने उसके

सुन्दर रूपको देखकर मनमें विचारा यह कोई देव है या दानव है ?

इतना मनमें विचारकर महाराजने उससे पूछा-भद्र ! तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है और तुम्हारी यह दशा क्यों हुई ? वह आदमी बोला-महाभाग ! मेरी कथा बड़ी आश्चर्यमयी है, पर पहले आप मुझे इस बन्धनसे छुड़ा दीजिये। मुझको बड़ी पीड़ा है, फिर मैं आपको सब वृत्तान्त सुनाऊँगा ! इसके दीन वचन सुनकर महाराजने तलवारसे उसकी रस्सियां काट डालीं। अब वह कुछ स्वस्थ हुआ और बोला-महाराज ! अब मेरी कथा सुनिये ! रूपाचलके वैताढ्य पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें हेमपुर नामका नगर है, वहांका राजा हेमरथ है, महारानीका नाम हेमलता है, इसी हेमलताके गर्भसे मैं उत्पन्न हुआ हूं, और मेरा नाम हेममाली है। मैं अपनी स्त्रीके साथ अपने घर आनन्दसे रहता था।

एक दिन मेरे मनमें तीर्थयात्रा करनेका विचार आया, अष्टाह्निक महापर्वके दिन थे। इन्हीं दिनों यात्राका विचारकर स्त्रीको साथ लेकर विमानमें बैठकर तीर्थक्षेत्रोंकी वन्दना कर इस दंडक वनमें आया था। पीछेसे रत्नचूड़ नामका विद्याधर अपने मित्रोंके साथ यहां आया, उसका विचार पापमय था, उसकी कुदृष्टि मेरी स्त्रीपर लगी थी, इसीलिये उस निर्दयने मुझे यहां बांध दिया और मेरी प्यारी स्त्रीको लेकर कहीं भाग गया ! उसकी बातोंको सुनकर महाराजको उसपर

बड़ी दया आई। रस्सीके द्वारा बांधे जानेके कारण हेममालीके बदनमें गढ़े पढ़ गये थे, उनसे लोहू चू रहा था। दयासे प्रेरित हो महाराजने उसकी मरमपट्टी की। हेममालीको इस सद्व्यवहारसे महाराजपर विश्वास होगया। हेममालीने हाथ जोड़कर विनयसे कहा–दीनबन्धो! जिस तरह आपने मुझे इस बन्धनसे छुड़ाया, उसी तरह उस पापीसे मेरी प्राण-वल्लभा स्त्रीको भी दिलवा दें! आप मुझे बड़े ही परोपकारी जान पड़ते हैं। पेड़में जिस तरह फूल और फलादिक सब परोपकारके लिए होते हैं उसी तरह सज्जन पुरुषोंका तन, मन और धन परोपकारार्थ होता है। आपकी सहायतासे मेरा कार्य सिद्ध होगा इसकी मुझे पूर्ण आशा है। महाराजने उसके नम्र निवेदनको सुनकर कहा–अच्छा, मैं तुम्हारी स्त्रीके ढूंढ़नेका प्रयत्न करता हूं। ऐसा कहकर उस हेममालीके विमानमें उसीके साथ बैठकर वनकी ओर चला। थोड़ी ही दूर जाकर देखा कि वही रत्नचूड विद्याधर हेममालीकी स्त्री तथा विद्याधरके मित्र एक पेड़के नीचे बैठे हैं।

उन्हें देखते ही महाराज चित्रश्रेणीने दूरसे ही गरजकर कहा–खबरदार रे पापिष्ठ रत्नचूड़! अगर अब भागा तो बिना मारे न छोड़ूंगा। इस बातके सुनते ही रत्नचूड़के छक्के छूट गये। उसके साथी विद्याधर तो मारे डरके भाग गये, लेकिन रत्नचूड़ न भागा, और उसने महाराजपर शस्त्र चलाया। उधरसे महाराजने भी बाणोंकी वर्षा की। थोड़ी देर

तक महाराज चित्रश्रेणीका और रत्नचूड़का घोर युद्ध होता रहा। अन्तमें रत्नचूड़ हार गया। और हाथ जोड़कर महाराजके पैरोंमें गिर गया, तथा कहने लगा-महाराज! मैं कान्तिपुरका युवराज हूं, मेरा नाम रत्नचूड है। मैं विद्या साधनेको गंधमादनगिरिपर गया था। विद्या साधकर अपने मित्रोंके साथ पृथिवीकी दर्शनीय वस्तुओंके देखनेकी अभिलाषासे इधर उधर घूमता था। रास्तेमें अपनी स्त्रीके साथ मुझे हेममाली मिला। उसे देखकर विद्याकी परीक्षाके लिये मैंने अपने मित्रोंसे कहा कि देखो, मैं अपनी विद्याका चमत्कार तुम्हें दिखलाता हूं, मित्रोंने मुझे उत्साहित किया। और मैंने अपने विद्या बलसे हेममालीकी स्त्रीको बेहोश कर दिया।

मेरी इस करामातको देखकर मेरे मित्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका प्रसन्न होना ठीक भी था। विलक्षण बात देखकर प्रायः सभी प्रसन्न होते हैं। मैंने हेममालीकी स्त्रीको केवल विद्याकी परीक्षाके लिये और हँसीमें ही बेहोश किया था। मेरा कोई और मतलब न था। तौभी हेममालीने क्रोधमें आकर मुझे बहुत ही बुरी गालियां दीं। वह किसी तरह चुप ही नहीं होता था। तब तो मुझे भी क्रोध आगया। मैंने उसे पेडसे बांध दिया, और उसकी स्त्रीको लेकर इस बनमें चला आया।

मैं हेममालीकी स्त्रीसे पूछ रहा था कि तू कौन है,

किसकी लड़की है। इत्यादि बातें पूछकर मैंने इसे जानेको कहा ही था कि-इतनेमें आपकी आवाज आई, जिसको सुनकर मेरे मित्र तो भाग गये और इसके बाद जो कुछ हुआ सो आपको मालूम ही है। मेरा आपसे इतना निवेदन और है कि मैंने पहलेसे अपने गुरुसे ब्रह्मचर्यव्रत ले रक्खा है मैंने किसी बुरी दृष्टिसे हेममालीकी स्त्रीका अपहरण नहीं किया था! महाराजने रत्नचूड़की सब बातें सुनीं, और उसको व्रती जानकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा-संसारमें परोपकारी पुरुष धन्य हैं। दीन और अनाथोंका भरणपोषण करनेवाले भी धन्य हैं, पर वे महात्मा अधिक धन्यवादके पात्र हैं जो निर्दोष ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करते हैं। हेममालीको अपनी स्त्रीके मिल जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने महाराज चित्रश्रेणिसे निवेदन किया-महाराज! आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। आपने मुझे दान दिया और स्त्रीको दिलाकर मेरे कुलका उद्धार किया। मैं आपका सदैवके लिये ऋणी हूं।

महाराज! मैं आपके इस कार्यसे बहुत ही प्रसन्न हूं। कृपाकर आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये, मैं चाहता हूं कि आप मेरे पाससे कोई विद्या ले लें। महाराजने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। फिर हेममालीने महाराजको एक ऐसा पलँग दिया, जो इच्छित स्थानमें ले जासकता था। तथा एक शत्रुञ्जय नामका अस्त्र दिया। इस शस्त्रकी ऐसी शक्ति

थी कि यह जिसपर चढ़ाया जाय उसका अवश्य ही प्राण नाश करता था। इन दोनों चीज़ोंको पाकर महाराजको बड़ी प्रसन्नता हुई। हेममालीकी बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद रत्नचूड विद्याधरने भी महाराजसे निवेदन किया कि महाराज! मेरी भी एक गुटिकाको स्वीकार कीजिये। इस गुटिकामें यह गुण है कि इसको शरीरसे छुआ देनेसे मन चाहा रूप बन जाता है। रत्नचूडके बहुत आग्रह करनेपर महाराजने उस गुटिकाको भी स्वीकार कर लिया।

इसके बाद महाराजने हेममाली और रत्नचूड़का मेल करा दिया और दोनोंको हसी खुशीके साथ अपने २ घर भेज दिया। सवेरा होते २ यह दोनों अपने २ घर पहुंच गये। महाराज चित्रश्रेणि भी अपने डेरेमें आये। सैनिकोंको जगाया। सब लोगोंके तैयार होजानेपर आगे चले। चलते २ सेना सहित महाराज सिंहपुरकी सीमायें पहुँचे।

महाराज चित्रश्रेणिके आनेकी बात रत्नपुराधीश महाराज सिंहशेखरको मालूम हुई। और उसने दूतके द्वारा महाराज चित्रश्रेणिको कहला भेजा कि यदि तुम अपना भला चाहते हो तो मेरे राज्यकी सीमामें पैर मत रखना। महाराज चित्रश्रेणिने उसी दूतसे कहला भेजा कि तू जाकर अपने स्वामीसे कह दे कि तुम हर तरहसे तैयार रहो, महाराज चित्रश्रेणि युद्ध करनेके लिये तुम्हारी सीमामें आगये हैं। दूतने जाकर सब हाल ज्योंका त्यों कह दिया।

तब तो सिंहशेखरको भी बड़ा क्रोध आया। उसने जल्दीसे अपनी सेना तैयार कराई और मदमाते हाथीकी नाईं रण-भूमिमें आडटा। बातकी बातमें दोनों तरफसे हथियार ठनकने लगे, रथवाले रथवालोंसे, हाथीवाले हाथीवालोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, और पैदल पैदलोंसे भिड़ गये। बाणोंकी वर्षासे आकाश मंडल छागया। तलवार, भाला, बर्छी और कटारोंके प्रहारोंसे योधागण जमीनपर लोटने लगे। किसीका सिर कट गया, किसीका एक हाथ और किसीके दोनों हाथ कट गये। दोनों ओरके अनेकों योधा वीर गतिको प्राप्त हुये पर दोनों ओरसे युद्ध होता ही रहा, कोई पक्ष भी पीछे न हटा। मदमाते हाथियोंकी तरह दोनों पक्षके वीर परस्परमें लडते थे। बहुत देरतक युद्ध होते रहने पर भी जब सिंहशेखर और उसकी सेना युद्धमें डटी रही थी तब महाराज चित्रश्रेणिने सिंहशेखर और उसके सैनिकोंकी बडी प्रशंसा की। जब महाराज चित्रश्रेणिने देखा कि सिंहशेखरकी सेना पीछे नहीं हटती, साहस बांधे आगे बढ़ी ही चली आरही है तब महाराजको क्रोध आया, और वह शत्रुंजय नामका अस्त्र हाथमें लिया। मनमें परमेष्ठी और उस हेममालीका नाम लेकर शत्रु सेनापर वह अस्त्र चलाया। बातकी बातमें शत्रुकी सब सेना अचेत होकर जमीनमें गिर पडी। अकेले सिंहशेखर अपनी सेनाकी यह दशा देखकर मनमें बड़ा चिन्तित

हुआ। थोडी देर विचार कर घोडेसे उतर कर बड़ी विनयसे महाराज चित्रश्रेणिके पास आया। और उनके पैरोंमें अपना मस्तक रख दिया। और हाथ जोडकर कहा-महाराज! मैं आपका अपराधी हूं, जो उचित समझें सो मुझे दण्ड दें। अब तो मैं आपके शरणमें आगया हूं। महाराजको उसकी दीन दशापर दया आगई। महाराजने अपना वह अस्त्र वापिस खींच लिया और सेना सचेत होकर उठ बैठी। महाराज चित्रश्रेणिने बडे आनन्दसे सिंहशेखरको साथ लेकर सिंहपुरमें प्रवेश किया। और बडे समारोहके साथ महाराज सिंहशेखरको फिरसे गद्दीपर बैठाया।

उससे पीछेका बाकी सब कर लिया। तथा आगे प्रति वर्ष कर भेजनेकी प्रतिज्ञा कराई। और बादमें अपनी सब सेनाको साथ ले वसन्तपुरकी ओर प्रयाण किया। रास्तेमें अनेक राजा मिले उनसे कर लेते हुये महाराज थोड़े ही दिनोंमें वसन्तपुरकी सीमामें आ पहुंचे। महाराजकी आगमनवार्ता रत्नसार मंत्रीने सुनी तो उसने नगरमें खूब ही उत्सव कराया। महारानी पद्मावतीको भी अपने प्राणनाथके आगमनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। मंत्री रत्नसारने बड़े ठाटबाटसे महाराजकी अगवानी की। नगरके प्रतिष्ठित लोगोंने आगे बढ़कर महाराजको बहु मूल्य भेंटे प्रदान कीं। महाराज बडी प्रसन्नतासे मंत्री तथा नगरके लोगोंसे मिले और उनके कुशल समाचार पूछे। रत्नसार मंत्रीको अपने पास बैठाकर राज्यका सब

समाचार पूछा। रत्नसारने भी संक्षेपमें राज्यकी सब कुशल सुनाई। इसप्रकार सब शिष्टाचार होजानेके बाद महाराज सब लोगोंके साथ चले और नगर द्वारमें आये। इधर अपने पूज्य पिताकी अगवानी करनेको युवराज धर्मसेन पहलेहीसे तैयार खड़ा था। नगर द्वारमें प्रवेश करते ही धर्मसेनने पिताको विनयसे प्रणाम किया और पिताके पैरोंमें मस्तक रख दिया। पिताने बडे प्रेमसे युवराजको उठाकर गोदीमें लेलिया और कुशल समाचार पूछा। बादमें बडे उत्सवके साथ नगरमें प्रवेश किया। नानाप्रकारके बाजे बज रहे थे। स्त्रियां मङ्गलगीत गारही थीं। शूरवीर योधाओंकी प्रशंसा होरही थी। इसी समय महाराज चित्रश्रेणि राजभवनमें आये और सिंहासनपर बैठे।

थोडी देर बाद सब लोगोंको विदाकर अन्तःपुर (रनवास) में गये। वहां महारानी पद्मावतीने महाराजका स्वागत किया। परस्परमें कुशल समाचार पूछे गये। महाराज, महारानी और रत्नसार मंत्रीने याचकोंको दान दिया। जिन मंदिरोंमें जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की। इन तीनोंका अच्छा समागम हुआ। तीनोंको जिनधर्मका परम श्रद्धान था। तीनों मिलकर धर्म-कार्य करते थे और राज्यका काम संभालते थे। एक दिन बातों बातोंमें महाराजने इच्छित स्थानपर लेजानेवाले, हेममालीके दिये हुये पलँगका जिकर किया, तब महारानी और रत्नसारने कहा-महाराज! इस पलंगकी

परीक्षा करनी चाहिये। यदि यह सचमुच ऐसा है तो इसपर बैठकर दुर्गम तीर्थस्थानोंकी वन्दना करनी चाहिये। तथा इसीपर बैठ संसारके देखनेयोग्य दृश्योंको देखना चाहिये। यह सुनकर महाराजने कहा—प्रिये! यह पलंग ठीक ऐसा ही है जैसा मैंने कहा है—इसकी परीक्षाकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अभी हाल युद्धमें हेममालीके उस शत्रुंजय अस्त्रकी परीक्षा मैं कर ही चुका हूं। इसलिये इसके विषयमें संदेह करनेका कोई कारण नहीं है। अब तो तीर्थयात्राकी तैयारी करनी चाहिये।

यह सुनकर मंत्रीने यात्रोपयोगी सब सामानको उस पलंगपर रखवा दिया। तथा महाराज चित्रश्रेणिने महारानी पद्मावती, मन्त्री रत्नसार, युवराज धर्मसेन, और अनेक परिवारके लोगोंको उस पलंगपर बैठाकर कैलासगिरिकी यात्राको प्रयाण किया। पलंग आकाशमें उडने लगा, सब लोगोंने मार्गकी अनुपम शोभा देखी और बडे प्रसन्न हुये। अब वह पलंग कैलासगिरिपर पहुँच गया। सब लोगोंने भरत चक्रवर्तीके बनवाये उत्तंग सुवर्णमय जिन चैत्यालयोंको देखा। उन चैत्यालयोंकी पूर्वदिशामें दो, दक्षिण दिशामें चार, पश्चिम दिशामें दश और उत्तर दिशामें आठ रत्नमय जिन प्रतिमाये विराजमान थीं। सबने उन सब प्रतिमाओंकी वन्दना की। और अष्टद्रव्यसे पूजाका प्रारम्भ किया गया। सब लोगोंने मन, वचन, कायकी शुद्धतापूर्वक उन प्रतिमा-

ओंकी पूजा की, स्तुति की और वन्दना की। कैलासगिरिके जिन चैत्यालयोंको वन्दनादि करके सभीने अपने मनुष्य जन्मको सफल माना। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिन भगवानकी पूजा करनेसे दोनों लोक सुधरते हैं और कर्मोंका नाश होता है। जो प्राणी शुद्ध मन, वचन, कायसे जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करते हैं, वे परमपद–मोक्षको प्राप्त होते हैं।

इसलिये हे भव्यो! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जिनेन्द्र भगवानकी पूजनमें मन लगाओ! जिन-पूजनका माहात्म्य बहुत बड़ा है। इस प्रकार कैलाशगिरिकी यात्रा कर महाराज अपने साथियोंके साथ अपने घर लौट आये। सबको उस पलंगकी शक्तिका विश्वास होगया। महाराज, महारानी और रत्नसारने फिर राजकाज संभाला। महाराजके पुण्यके प्रभावसे उनका यश चारों ओर फैला। अब सब राजा इनके आधीन होगये। अब न इनका कोई शत्रु था और न राज्यमें किसी प्रकार उपद्रव ही था। महाराजने अपने उत्तम गुणोंसे दूसरे राजाओं और देश-भरके विद्वानोंके हृदयमें स्थान पा लिया, समस्त प्रजाने इनको एक उत्तम शासक मान लिया, चारों दिशाओंमें सूर्यके समान इनका तेज विराजमान था। इन्द्रके समान विपुल विभूति थी, पुत्र और पौत्र थे। महाराजके पुण्योदयसे सांसारिक भोगविलासकी समग्र सामग्री उपस्थित थी। इस प्रकार सांसारिक सुखोंका अनुभव करते तथा धर्मसेवन करते हुये दिन बिताते थे।

एक दिन महाराज चित्रश्रेणि राजसभा (दर्बार) में विराजमान थे, उसी समय वनपालने आकर महाराजको विनयसे प्रणाम किया। और निवेदन किया—महाराज! आपके पुण्योदयसे मनोरम उपवनमें दमवर नामके मुनि-राजका शुभागमन हुआ है। उनकी भव्य मूर्तिसे शांतिका साम्राज्य है। वे सांसारिक भोगोंसे उदासीन, और केवल-ज्ञानके धारी हैं। उनके आगमन मात्रसे परस्परके विरोधी जीवोंने वैर छोड़ दिया है और शांत भावसे केवली भग-वानके पास बैठ गये हैं।

यह समाचार सुनकर उस वनपालको बहुतसे वस्त्र और आभूषण दिये। तथा नगरमें मुनिराजकी वन्दनाके लिये घोषणा करवाई। नगरके सब नरनारीगण मुनिराजकी वंदनाके लिये तैयार होगये। महाराजने अपने परिवार और उन नागरिकजनोंके साथ उपवनकी ओर प्रयाण किया। थोडी ही देरमें महाराज अपने दलबल सहित उन उपवनमें पहुंच गये जहां दमवर मुनिराज बिराजमान थे। महाराज और सब लोग यथास्थान बैठ गये। सब लोगोंके बैठ जानेपर मुनिराजने बडी शांतिसे उत्तमक्षमादि दश धर्मोका उपदेश दिया। संसारकी अनित्यता बतलाते हुये बारह भावनाओंका कथन किया। इस धर्मोपदेशका महाराजके हृदयपर बडा गहरा प्रभाव पडा। संसारके सब विषय तुच्छ मालूम पडने लगे महाराजके हृदयमें उत्कट वैराग्य आया। धर्मोपदेशके

समाप्त होते ही मुनिराजको नमस्कार कर महाराज चित्रश्रेणि अपने घर आये, और युवराज धर्मसेनको बड़े समारोहके साथ राजगद्दी पर बैठा दिया। रत्नसार मंत्रीने भी अपना पद अपने सुमति नामक पुत्रको दे दिया। इसप्रकार मंत्री भी महाराजाके साथ २ दीक्षित होनेको तैयार होगया महाराजने समस्त परिजन और परिजनोंको बुलाकर उनसे क्षमा मांगी तथा स्वयं भी सबको क्षमा प्रदान की। मंत्रीने भी ऐसा ही किया। महारानी पद्मावतीने भी दीक्षा लेनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था। इसलिये महारानीने भी सबसे क्षमा प्रदान की। महाराज और रत्नसार बनमें उन्हीं दमवर मुनिराजके पास गये और निवेदन किया—

मुनिराज! हम संसारसे उदासीन हैं इसलिये हमें जिनदीक्षा देकर अनुगृहीत कीजिये। मुनिराजने उनकी सब व्यवस्था पूंछकर उन्हें दीक्षा देदी। दीक्षाके बाद उन दोनोंने घोर तप किया। नाना देशोंमें विहार कर भव्य प्राणियोंको उपदेश दिया।

सो हे श्रेणिक! घोर तप करके वे दोनों अच्युत स्वर्गमें गये और वहांसे च्युत होकर मनुष्यभव धारण कर मुक्ति प्राप्त की। महाराजके साथ ही महारानी पद्मावतीने भी दीक्षा ली थी। उन्होंने भी दुर्धर तप कर अच्युत स्वर्ग प्राप्त किया। और वहांसे चयकर मनुष्य भव धारण कर मुक्ति प्राप्त की।

हे राजन ! शीलके प्रभावसे इन तीनोंने ऐसे उत्तम पदको पाया है। वास्तवमें शीलके प्रभावसे इच्छित वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। आज्ञा पालनेवाली स्त्री, पुत्र और पौत्रोंकी भी प्राप्ति इसीसे होती है। गौरव, प्रतिष्ठा और निर्मल यश विस्तारको प्राप्त होता है। शील पालन करनेवाले मनुष्यको संसारमें न आपत्तियोंका भय है और न भूत पिशाचादिकका। शीलके प्रभावमें किसीको भी सन्देह नहीं है। इस शीलके पालन करनेसे परलोकमें उत्तम गति तो प्राप्त होती है पर इस लोकमें भी समस्त सुखोंका अनुभव करता है। इस विषयमें चित्रश्रेणि और पद्मावतीकी यह कथा प्रमाण है जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि गौतमस्वामीने श्रेणिक महाराजसे शीलके सम्बन्धमें चित्रश्रेणि और पद्मावतीकी कथाका मनोरंजक वर्णन किया। इस कथाको सुनकर समस्त सभाके लोगोंको असीम हर्ष हुआ। और सबने शीलधर्म पालन करनेका संकल्प किया।

पञ्चम परिच्छेद समाप्त।

